श्री महाकविबाणभट्टविरचितायाः

कादम्बर्याः

शुकनासोपदेशः

-- व्याख्याकार --

आचार्य रामनाथ शर्मा 'सुमन'



साहित्य भण्डार, मेरठ

16 · 19x 21
24

महाकविबाणविरचितः

शुकनासोपदेशः

(कादम्बरीतः)

Deepali Khajuria
ROLL NO → 1

व्याख्याकार:

रामनाथ शर्मा 'सुमन'

व्याकरण-साहित्याचार्य, एम० ए०, साहित्यरत्न

राणा शिक्षा शिविर कालेज

धौलाना (मेरठ)

DEEPALI

साहित्य भण्डार

शिक्षा साहित्य प्रकाशक

सुभाष बाजार, मेरठ-२५०००२

● प्रकाशक :
रतिराम शास्त्री
अध्यक्ष :
साहित्य भण्डार,
सुभाष बाजार, मेरठ–२
दूरभाष ५१८७५४

प्रथम संस्करण, १९६८
द्वितीय संस्करण, १९७०
तृतीय संस्करण, १९७३
चतुर्थ संस्करण, १९७५
पञ्चम संस्करण, १९७७
षष्ठ संस्करण, १९७९
सप्तम संस्करण, १९७९
अष्टम संस्करण, १९८१
नवम संस्करण, १९८४–८५
दशम संस्करण, १९८६
एकादश संस्करण, १९९०
द्वादश संस्करण, १९९३
नवीन संस्करण १९९९

मूल्य : पन्द्रह रुपये (१५००)

मुद्रक :-
मेरठ ऑफसेट प्रिन्टर्स
मेरठ ।

भूमिका

संस्कृत गद्य का विकास

विषय प्रवेश

प्राचीनतम साहित्य की पद्यमयता—यों तो विश्व के प्रत्येक भूखण्ड में रहने वाला मानव अपना दैनिक जीवन का व्यवहार सदा से गद्यमय भाषा में ही चलाता आ रहा है तथापि यह सत्य है कि विश्व की प्रत्यक भाषा का प्राचीनतम साहित्य प्राय: पद्यात्मक ही मिलता है। मुद्रणादि सुविधाओं के अभाव काल में साहित्य को स्मृति-पटल पर चिरस्थायी बनाये रखने में पद्य की सङ्गीतात्मकता लघुता, लय-तालबद्धता तथा सौन्दर्यवत्ता विशेष रूप से सहायक भी होती थी, जबकि गद्यात्मक वाक्यों को अधिक काल तक स्मरण रखना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य था।

संस्कृत भाषा का प्राचीनतम साहित्य भी पद्यबहुल ही है। इसके वैदिक तथा लौकिक दोनों रूपों में प्राचीनतम गद्य-साहित्य का प्राय: अभाव है। ऋग्वेद की रचनाएँ जहाँ 'ऋक् पादबद्धम्' लक्षण के अनुसार पद्यमय है। वहीं ज्योतिष्, वैद्यक, नीतिशास्त्र जैसे लौकिक विषयों पर लिखे गये प्राचीनतम ग्रन्थ भी पद्यमय ही हैं। विशुद्ध साहित्यिक ग्रन्थों में भी पद्यबाहुल्य ही दृष्टिगत होता है।

संस्कृत का प्राचीनतम गद्य—इतना होने पर भी विश्व की भाषाओं में सर्वप्रथम गद्य-साहित्य के अवतरण का श्रेय हमारी संस्कृत भाषा को ही है। इसके वैदिक तथा लौकिक दोनों रूपों की श्रीवृद्धि अतिप्राचीनतमकाल से गद्य-साहित्य के माध्यम से ही हुई है। 'गद्यं यजुमतम्' लक्षण के अनुसार यजुर्वेद तो गद्य शैली का प्रतिनिधि ग्रन्थ माना ही जाता है। वैद्यक-ग्रन्थ चरकसंहिता में प्राचीनतम गद्य का नमूना देखने को मिलता है। इतना ही क्यों, वैदिक काल के सीधे-सादे बोल-चाल के गद्य से लेकर लौकिक प्रौढ़ समासबहुल

ओजस्वी गद्य तक के विकास की परम्परा भी संस्कृत में अविच्छिन्न रही है और विकास की इस परम्परा में हमें गद्य की विभिन्न शैलियों के दर्शन होते हैं।

१. वैदिक साहित्य का गद्य

वैदिक साहित्य से तात्पर्य उस प्राचीन संस्कृत साहित्य से है जिसमें प्राचीन भारतीयों की धार्मिक मान्यताएँ सुरक्षित हैं। इस साहित्य के अन्तर्गत १. मन्त्र संहिताएँ, २. ब्राह्मण-ग्रन्थ, ३. उपनिषद् तथा ४. वेदाङ्ग रूप में सूत्र शैली में लिखे गये ग्रन्थ गिने जाते हैं।

मन्त्र-संहिताओं का गद्य—मन्त्र-संहिताओं में सर्वप्रथम हमें शुक्लयजुर्वेद में गद्य के दर्शन होते हैं। कृष्णयजुर्वेद में मन्त्र भाग के साथ ब्राह्मण भाग भी मिला हुआ है जो सर्वांश रूप में गद्यमय है। अथर्ववेद का १५वाँ व १७वाँ काण्ड गद्यांशयुक्त है। संहिताकालीन गद्य की सादगी तथा रमणीयता देखिये—

अग्ने व्रतपते व्रत चरिष्यामि तच्छकेय तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि। कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति तस्मै त्वा युनक्ति। कर्मणे वां वेषाय वाम्।

शुक्ल यजु० अध्याय १ मं० ५—६ ॥

ब्राह्मण ग्रन्थों का गद्य—ब्राह्मण ग्रन्थों में ब्रह्म अर्थात् यज्ञ की प्रक्रिया का सविस्तार वर्णन तथा यज्ञों की आध्यात्मिकता, आधिभौतिकता तथा वैज्ञानिकता की व्याख्या गद्य में की गई है। यहाँ विषय के प्रतिपादनार्थ दिये गये आख्यानों के वर्णनात्मक प्रसङ्गों में संवाद जैसा आनन्द तो मिलता ही है छोटे छोटे तथा समास रहित पदों वाले वाक्यों के प्रयोग तथा वाक्यालङ्कार रूप में 'ह' 'वै' 'वाव' 'उ' आदि अव्ययों के प्रयोग के कारण गद्य का सरस विकसित रूप हमें इन ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है। तप-साधना के लिये अरण्यों का आश्रय लेने वाले द्विजों के कर्त्तव्य कर्मों के निर्देशक आरण्यक ग्रन्थों में, जिन्हें ब्राह्मण ग्रन्थों का ही उत्तर-भाग कहा जाता है, गद्य की यह विकास-धारा लौकिक गद्य के ही सन्निकट आ पहुँची है। ब्राह्मणकालीन गद्य का एक अवतरण देखिये—

हरिश्चन्द्रो ह वैधस ऐक्ष्वाको राजाऽपुत्र आस। तस्य ह शतं जाया बभूवुः। तासु पुत्रं न लेभे। तस्य ह पर्वतनारदौ गृह ऊषतुः। स ह नारदं पप्रच्छ। स एकया पृष्टो दशभिः प्रत्युवाच ॥ ऐतरेय ब्राह्मण ॥ पञ्चिका ७ अध्याय ३ ॥

उपनिषदों का गद्य—उपनिषद्-ग्रन्थों में अविद्या का नाश, ब्रह्म की प्राप्ति तथा दुखों की शिथिलता आदि विषयों का प्रतिपादन किया गया है। इनमें बृहदारण्यक, छान्दोग्य, तैत्तिरीय तथा कोशितकी इन प्राचीन उपनिषदों की रचना गद्य में हुई है। केनोपनिषद् में भी गद्य का प्रयोग हुआ है। इनका गद्य ब्राह्मण ग्रन्थों के गद्य के समान है। प्रश्न, मैत्रायणी तथा माण्डूक्य उपनिषदों का गद्य लौकिक गद्य के अधिक सन्निकट है। वैसे सरलता, सजीवता, आडम्बर-शून्यता, विनोदपूर्णता, क्रियापदप्रचुरता पदपुनरुक्ति तथा समासरहित आदि गुणों के कारण उपनिषदों का गद्य पूर्ववर्ती गद्य की अपेक्षा सरल एवं आकर्षक है। प्रस्तुत अवतरण में यह आकर्षण देखा जा सकता है—

नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि। ऋतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद् वक्तार-मवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम्॥ (तैत्तिरीय उप० प्रथक अनु०)

सूत्र शैली के ग्रन्थों का गद्य—वेदाङ्ग रूप में जिन ग्रन्थों की रचना सूत्र-शैली में हुई है उनमें सर्वप्रथम कलासाहित्य में हमें गद्य के दर्शन होते हैं। थोड़े से थोड़े शब्दों में अधिक से अधिक अर्थ व्यक्त करने का प्रयास यहाँ किया गया है। व्याकरण-सूत्रकार पाणिनि की अष्टाध्यायी में इस शैली का चरम परिपाक देखने को मिलता है। भारतीय दर्शनों का सूत्रात्मक गद्य भी इसी परम्परा में समझा जाता है। यास्क का निरुक्त जो वैदिक शब्दों का अर्थ समझने के लिये सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है सूत्र-शैली के गद्य में ही लिखा गया है। शैली तथा विषय दोनों दृष्टियों से सूत्रात्मक साहित्य का विकास ब्राह्मण-ग्रन्थों से ही हुआ है अतः ब्राह्मणों के इस साहित्य का घनिष्ट सम्बन्ध है। सूत्रात्मक गद्य का स्वरूप देखिये—

तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः। अग्निः पृथिविस्थानः वायुर्वा इन्द्रो वान्त-रिक्ष स्थानः। सूर्योद्युस्थानः। तासां महाभाग्यादेकैकस्या अपि बहूनि नामधे-यानि भवन्ति॥ अपि वा कर्म पृथक्त्वात्॥ (निरुक्त ७/५)

३. लौकिक साहित्य के गद्य

सूत्र-शैली के ग्रन्थों के उपरान्त लौकिक संस्कृत साहित्य का युग माना जाता है। रामायण, महाभारत, पुराण, वेदाङ्गों व दर्शन-सूत्रों पर लिखे गये

भाष्य तथा अलङ्कृत शैली के परवर्ती काव्य सब लौकिक साहित्य की सीमा में आते हैं। इस साहित्य का अधिक भाग पद्यमय है। जो कुछ गद्य में लिखा गया है उसे १. शास्त्रीय तथा २. काव्यात्मक दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। व्याकरण दर्शन आदि विषयों के लिये प्रयुक्त विवेचन प्रधान गद्य शास्त्रीय तथा नाटक, चम्पू व कथा साहित्य आदि का गद्य काव्यात्मक है। महाभारत व भागवतादि पुराणों का गद्य दोनों का प्रतिनिधित्व करता है।

शास्त्रीय गद्य—शास्त्रीय गद्य का प्राचीनतम रूप हमें प्रसिद्ध वैयाकरण पतञ्जलि के महाभाष्य में मिलता है जिसका गद्य बोल-चाल की कथनोपकथन वाली आडम्बरशून्य अलङ्कृत शैली का है। सक्षेपीकरण की दुरूहता तथा समस्त पदों की गाढ़बन्धता का वहाँ सर्वथा अभाव है। पतञ्जलि के प्राञ्जल गद्य की सुषमा का साक्षात्कार कीजिये।

शब्दानुशासनमिदानीं कर्त्तव्यम्। तत्कथं कर्त्तव्यम्। किं शब्दोपदेशः कर्त्तव्य आहोस्विदपशब्दोपदेशः आहोस्विदुभयोपदेशः? अन्यतरोपदेशेन कृतं स्यात् तद्यथा भक्ष्यनियमेनाभक्ष्यप्रतिषेधो गम्यते। 'पञ्चनखा भक्ष्या' इत्युक्ते गम्यते एतद्-अतोऽन्येऽभक्ष्या इति॥

॥ महाभाष्य १/१/१॥

दर्शन सूत्रों के भाष्यों का गद्य स्वच्छता, स्पष्टता के साथ गहन गम्भीरता भी लिये हुये है। मीमांसा-सूत्रों के भाष्यकार शबरस्वामी का गद्य सीधी-सादी रोचक शैली में है। न्यायशास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान् जयन्तभट्ट का न्यायमञ्जरी का गद्य सुन्दर, सरस तथा प्राञ्जल तो है ही व्यङ्ग्य, चुस्ती तथा तीखापन भी लिये हुये है। वेदान्त दर्शन के भाष्यकार शङ्कराचार्य के गद्य की तो सुषमा ही निराली है। उनके प्रसन्न गम्भीर गद्य के सारगर्भित, प्रौढ़ तथा प्राञ्जल वाक्यों में शैली का विवेचनात्मक रूप निखर आया है। इन भाष्यकारों के पश्चात् अनेक टीकाकारों ने भी गद्य लिखा है किन्तु खेद है कि वे शैली की सरलता, सरसता तथा प्राञ्जलता के स्थान पर क्लिष्टता, रूक्षता तथा दुरूहता की ओर ही झुके हैं। विकासक्रम की दृष्टि से दुरूह गाढ़बन्धता वाले काव्यात्मक के गद्य के स्रोतरूप में इन्हें अवश्य स्मरण किया जाना चाहिये।

काव्यात्मक गद्य—नाटकों, चम्पू-काव्यों एवं गद्य-काव्यों के अलङ्कृत शैली वाले गद्य का उद्भव कब हुआ, इस विषय में विद्वान् किसी निश्चित मत पर

नहीं पहुँचे हैं। यदि विष्णुपुराण और श्रीमद्भागवत का रचना का काल भारतीय परम्परा के अनुसार आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व कलियुग के प्रारम्भ में माना जाय तो इनके प्रसाद गुण सम्पन्न आलङ्कारिक गद्य को प्रारम्भिक काव्यात्मक गद्य कोटि में रखा जा सकता है। विष्णुपुराण में गढ़बन्धता की कमी होने पर भी साहित्य सौन्दर्य पूर्णतः विद्यमान है। भागवत का गद्य तो नितान्त प्रौढ़ अलङ्कृत तथा भावाभिव्यञ्जक है। एक उदाहरण लीजिये—

सैव देवी महाकाली भृशममर्षरोषावेषरभसविलसितभ्रुकुटिविटकुटिल दंष्ट्रा-रुणेक्षणाटोपातिभयानकवदना हन्तुकामेवेदं महाट्टहासमतिसरम्भेण विमुञ्चन्ती तत उत्पत्य पापीयसां दुष्टानां तेनासिना विवृक्णशीर्ष्णां गलात्स्रवन्तमसृगासव-मत्युष्णं सहगणेन निपीयातिपानमदविह्वलोच्चैस्तरां स्वपार्षदैः सह जगौ ननर्तच विजहार च शिरःकन्दुकलीलया।

भागवत स्कन्ध ५। अ.९। श्लोक ।।१८।।

आश्रयदाताओं की अत्युक्तिपूर्ण प्रशस्तियों के रूप में प्राप्त पुरातन शिला-लेखों का गद्य भी प्रौढ़ आलङ्कारिक तथा हृदयग्राही है। महाक्षत्रप रुद्रदमन् (१५० ई०) के शिलालेख के गद्य में लम्बे समास तथा अनुप्रासादि अलङ्कारों का खुलकर प्रयोग किया। समुद्रगुप्त (३५० ई०) की प्रशस्ति में प्रयाग किले के स्तम्भ पर लिखित पद्य में ही हरिषेण ने श्रुति माधुर्य लाने के लिये अनु-प्रासादि का प्रयोग तो किया ही है, श्लेष का प्रयोग करके कृत्रिम अलङ्कृत शैली का निर्देशन भी प्रस्ततु कर दिया है। यही शैली आगे सुबन्धु और बाण की कृतियों में पूर्ण परिपाक लेकर उपस्थित हुई हैं। उदाहरण के लिये एक वाक्यांश देखिये—

सर्वपृथिवीजयजनितोदव्याप्तनिखलावनितलां कीर्तिमितस्त्रिदशपतिभवनगमना-वाप्तललितसुखविचरणमाचक्षाण इव भुवो बाहुरयमुच्छ्रितः स्तम्भः।

।। प्रयागस्तम्भः ।।

४. गद्य-काव्यों का उदय

सुबन्धु, दण्डी व बाण की पूर्ण अलङ्कृत शैली की रचनाओं से पूर्व की गई गद्यकाव्यात्मक रचना आज उपलब्ध नहीं है। अतः सर्वप्रथम गद्य-काव्य का जन्म कब हुआ, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। केवल यह अनुमान

लगाया जा सकता है कि ऐसी प्रौढ़ रचनाओं के लेखकों के समक्ष अवश्य ही कुछ पुरातन कृतियाँ रही होंगी जिनसे प्रेरणा लेकर अपने गद्य-काव्यों का सर्जन किया होगा। अनेक प्रामाणिक ग्रन्थों में पूर्ववर्ती गद्य-काव्यो के नाम का संकेत इस अनुमान की पुष्टि भी कर देता है। पाणिनीय सूत्रों के वार्तिक-कार कात्यायन (ई० पू०३००) ने अपने एक वार्तिक में आख्यान और आख्यायिका का पृथक् उल्लेख करके 'आख्यायिका' के भेद की जहाँ सत्ता मानी है वहीं भाष्यकार पतञ्जलि ने आख्यायिका के उदाहरण रूप में 'वासवदत्ता' 'सुमनोत्तरा तथा 'भैमरथी' का नामोल्लेख किया है। भोज ने अपने शृंगार प्रकाश' में तथा दण्डी ने 'अवन्ति-सुन्दरी-कथा' में 'मनोवती' नामक पूर्व कृति का संकेत किया है। वररुचि के नाम से 'चारूमति' तथा श्रीपालित के नाम से 'तरङ्गवती रचना का उल्लेख मिलता है। शूद्रक कथाकार के रूप मे रामिल और सोमिल की चर्चा जल्हण ने अपने 'सोमापालचरित' में की है। महाकवि बाण ने स्वयं भट्टार हरिश्चन्द्र के गद्यबन्ध की सर्वश्रेष्ठता का उद्घोष 'हर्षचरित' में किया है। आज इन रचनाओं के विद्वान न रहने पर इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अलङ्कृत शैली के गद्य-काव्यों की परम्परा ई० पू० चतुर्थ शताब्दी में चली आ रही थी जो विकराल काल के गाल में पड़ विगलित हो गई। किन्तु उनकी अलङ्कृत समासान्त पदावली ललित, श्लेष विरोधाभास परिसंख्यात्मिकता शैली विकसित होती हुई सुबन्धु, दण्डी व बाण की कृतियों में चरम परिपाक को प्राप्त हुई।

गद्य-काव्यों का स्वरूपभेद—'आख्यायिका' और कथा के रूप में गद्य का स्वरूप भेद आज साहित्य जगत् में प्रचलित है। बाण ने 'हर्षचरित' की भूमिका में आख्यायिका रूपी समुद्र में जिह्वाप्लवन के चापल की बात कह कर 'हर्षचरित' को आख्यायिका तथा कादम्बरी की भूमिका में कादम्बरी को अद्वितीय कथा बताया है। अमरकोष में आख्यायिका को ऐतिहासिक सामग्री पर आधारित तथा कथा को कविकल्पित कथावस्तु पर अवलम्बित बताया है। आचार्य भामह ने अपने 'अलङ्कार' ग्रन्थ में कथा और आख्यायिका की स्पष्ट भेदक रेखा खींची है। उसके मतानुसार—

१. आख्यायिका में तथ्यपूर्ण घटनाओं का समावेश होता है जबकि कथा की कथावस्तु कविकल्पित होती है।

२. आख्यायिका का नायक अपनी कहानी का स्वयं वक्ता होता है जबकि कथा में नायक से इतर वक्ता के चरित्रों का बखान करता है।

३. आख्यायिका का विभाजन उच्छ्वासों में होता है, कथा का नहीं।

४. आख्यायिका में भावी अर्थ का संकेत वक्त्र तथा उपवक्त्र छन्दों में होता है, कथा में इनका प्रयोग नहीं होता।

५. आख्यायिका की रचना संस्कृत में होती है, कथा का निबन्ध अपभ्रंश में भी हो सकता है।

६. कन्याहरण, संग्राम विरह तथा सूर्योदयादि के प्रसङ्ग कथा के लिये अनिवार्य है, आख्यायिका के लिये नहीं।

७. विशेष अभिप्राय से विशेष शब्दों का प्रयोग कथा में होता है, आख्यायिका में नहीं।

आचार्य दण्डी ने इस भेद को नहीं माना है। उनके मतानुसार एक जाति की ही ये संज्ञायें हैं। एक के लक्षण का प्रयोग बिना बाधा के दूसरे में हो सकता है। कथावस्तु की ऐतिहासिकता या कल्पितता के एकमात्र भेद के आधार पर इनका पृथक् नामकरण किया गया है। साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने कवि द्वारा अपने वंश-वर्णन को आख्यायिका के लिये अपेक्षित माना है, अन्यथा अन्य सब लक्षण दोनों में घटित हो सकते हैं।

५. प्राचीन गद्यकाव्यकार

सुबन्धु—गद्य-काव्यों के प्राचीन रचयिताओं में सुबन्धु का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। यद्यपि सुबन्धु के व्यक्तित्व के विषय में कोई निश्चित ज्ञान हमें नहीं है तथापि कुछ संकेतों के आधार पर ईसा की छठी शताब्दी में उनकी विद्यमानता मानी जा सकती है। बाण ने हर्षचरित में श्लेष के द्वारा वासवदत्ता का संकेत किया है तथा कादम्बरी में 'अतिद्वयी कथा' पद से गुणाढ्य की बृहत्कथा तथा सुबन्धु की वासवदत्ता से उत्कृष्टता का अर्थ समझा जाता है। 'राघवपाण्डवीय' के रचयिता कविराज ने :—

सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः ।
वक्रोक्तिमार्गनिपुणश्चतुर्थो विद्यते न वा ॥

इस अपनी गर्वोक्ति में सुबन्धु का नाम बाण से पहले लिखा जाता है, और बाण का समय सप्तम शताब्दी का मध्य निश्चित है।

सुबन्धु की एकमात्र कृति वासवदत्ता है जिसका सम्बन्ध संस्कृत साहित्य की प्रसिद्ध उदयन कथा से न होकर लोककथाओं की प्राचीन रूढ़ियों तथा अपनी कल्पना से है। इस कथा में चिन्तामणि नामक राजा के पुत्र कन्दर्पकेतु तथा शृंगार शेखर नामक राजा की पुत्री वासवदत्ता का वृत्त वर्णित है। तोता-मैना का वार्तालाप, शापवश वासवदत्ता का पत्थर हो जाना, जादू का घोड़ा, आकाश-वाणी आदि रूढ़ियाँ यहाँ सुबन्धु की कल्पना से मण्डित होकर पाठकों की कौतूहल वृत्ति को जगाती रहती है।

कथावस्तु सङ्गठन, समृद्धि तथा प्रभावोत्पादन की दृष्टि से इस कृति के आधार पर कवि का कौशल प्रस्फुटित नहीं हो पाता। केवल शाब्दिक व्यायाम के चक्र में पड़ रहकर प्रबन्ध को प्रत्यक्ष श्लेषमय, प्रपञ्च विन्यास, वैदग्ध्यनिधि बनाने में ही कवि का श्रम दिखायी देता है। शब्दाडम्बरमण्डित, दीर्घ वाक्य-विन्यास समन्वित समास प्रधान गौड़ी शैली अपनाकर सुबन्धु ने काव्य को श्लिष्ट क्लिष्ट बना दिया है। विरोधाभास, उपमा व उत्प्रेक्षा की कमी न होने पर भी अभङ्ग सभङ्ग श्लेष विन्यास ही सुबन्धु का अपना लक्ष्य रहा है। इतने अप्रसिद्ध तथा कठिन श्लेषों का उसने प्रयोग किया है कि विद्वानों का भी दिमाग चक्कर काटने लगता है। अर्थ समझने के लिये पाठकों पर 'कोष पश्यन् पदे पदे' की उक्ति चरितार्थ होती है। इसी के परिणामस्वरूप काव्य का सरसत्व समाप्त हो गया है, प्रवाह रुक गया है और दुर्बोधता बढ़ गयी है। अन्यथा काव्य का कथानक ऐसा नहीं है जो पाठकों की रुचि तथा उत्सुकता को बनाये रखे। इतना होने पर भी श्लिष्ट प्रयोगों से इतर स्थलों पर सुबन्धु के वर्णन स्वाभावोक्ति की रमणीयता तथा लम्बे समासान्त पदों में भी आनुप्रासिक निबन्ध के कारण स्वतः प्रवाह लिये हुए मिलते हैं। वायु-वर्णन का एक प्रसङ्ग देखिये—

कन्दर्पकेलिसम्पल्लम्पलाटोललाटतटलुलितालकभाम्मिल्लभारनकुलकुसुमप-

रिमलमलेनसमृद्धमधुरिमगुणः कामकलाकलापकुशलचारुकर्णाटसुन्दरीस्तनकलशघुसृणधूलिपटलपरिमलावोदवाहीनवयौवनरागन्तरलकेरलीकपोलपालपद्यावली परिचय चतुर...सुरतश्रमपरवशान्ध्रपुरन्ध्रनीरध्रपीनपयोधरभारनिदाघजलकणनिकरशिशिरितोमलयमारुतो ववौ ।। वासवदत्ता ।।

दण्डी—दण्डी के सम्बन्ध में उनकी रचनाओं से इत्तरकालीन अनुश्रुतियों से जो कुछ पता चलता है उसके अतिरिक्त जानकारी का और कोई साधन नहीं है। "त्रयोदण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषुलोकेषु विश्रुताः" उक्ति के आधार पर १. काव्यादर्श २. दशकुमारचरित तथा ३. अवन्तिसुन्दरीकथा। ये तीन कृतियाँ उनके नाम से बतायी जाती हैं इनमें से अवन्तिसुन्दरीकथा के आधार पर उन्हें महाकवि भारवि की चौथी पीढ़ी में माता गौरी तथा पिता वीरदत्त की सन्तान बताया जाता है, किन्तु विद्वान इस कथा को दण्डिकृति होने में सन्देह करते हैं। भामह के ७०० ई० पूर्ववर्ती होने पर भी काव्यादर्श की रचना भामह से बहुत अधिक पहले की मानने में कोई कारण नहीं दीखता। कुछ विद्वानों ने दशकुमारचरित में वर्णित भूगोल को हर्षवर्धन के साम्राज्य से पूर्व की स्थिति के आधार पर माना है। ये ही वे अनुमान हैं जिनके आधार पर हम दण्डी का समय षष्ठ शताब्दी का उत्तरार्ध या सप्तम का पूर्वार्ध मान सकते हैं।

अन्य दो कृतियों के होने पर भी 'दशकुमारचरित' गद्यकाव्य की दण्डी की कीर्तिपताका को साहित्याकाश में उन्मुक्त गति से फहरा रहा है। दश राजकुमारों के देश देशान्तरों में भ्रमण तथा रोमाञ्चकारी दुस्साहसों के वर्णनों से सञ्चालित यह ग्रन्थ जिस रूप में आज उपलब्ध है उसमें तीन भाग हैं १. पूर्वपीठिका, २. मुख्य कथा भाग ३. उत्तरपीठिका। इसमें पूर्वपीठिका व उत्तरपीठिका में पाँच उच्छ्वास हैं जिनमें मूल कथांश की कमी को दूर करने के लिये दो राजकुमारों का चरित लिखा गया है। मुख्य कथा आठ उच्छ्वासों में है जिनमें आठ राजकुमारों का चरित वर्णन है। अन्त में ५–६ पृष्ठों में उत्तरपीठिका है।

संस्कृत गद्य के लेखकों में एकमात्र दण्डी ही ऐसे कवि हैं जिसने सुबन्धु वाली अत्यधिक अलङ्कृत कृत्रिम गद्य-शैली तथा पञ्चतन्त्र वाली स्वाभाविक गद्य-शैली के बीच की स्वतन्त्र वैदर्भी अपनायी है अन्यथा सुबन्धु के ही मार्ग

का अनुसरण उत्तरवर्ती गद्य लेखकों ने किया है। विषय तथा शैली के निर्वाह में सन्तुलन बनाये रखने का दण्डी का पूरे ग्रन्थ में प्रयास रहा है। हास्य के हल्के वातावरण के वर्णन में तथा गम्भीर करुण के मार्मिक चित्रण में कवि ने शैलीगत अनुरूप परिवर्तन किया है और यह उसके यथार्थवादी दृष्टिकोण का ही परिणाम है। वैदर्भी के इस सफल प्रयोक्ता ने सरल प्रवाहमयी भाषा का प्रयोग करके भाषा पर अपने अधिकार का परिचय दे दिया है। दशकुमारचरित में न तो परिश्रमसाध्य दुरूह ग्रन्थियाँ हैं, न असंयत समासान्त पदावली न जटिल श्लेष प्रयोग है और न निरर्थक शब्दाडम्बर। सौन्दर्य-वर्णन प्रसङ्ग में यदि कहीं दीर्घसमासान्त पदावली संवलित लम्बे वाक्यों का प्रयोग हुआ भी है तो वह सीमा के अन्दर ही। हाँ! पूर्वपीठिका की शैली अवश्य ही कृत्रिम तथा बाणोत्तर काल की ह्रासोन्मुखी प्रवृत्ति की परिचायिका है जिसका सम्बन्ध दण्डी से न होकर किसी अज्ञात लेखक से ही है। एक अकाल-वर्णन में दण्डी की शैली की सरलता तथा सजीवता का उदाहरण देखिये—

क्षीणसारं सस्यम् ओषधयोवन्ध्याः न पल्लवन्तो वनस्पतयः, क्लीबा मेघाः, भिन्नस्रोतसः स्रवन्त्यः, पङ्कशेषाणि, पल्वलानि, निर्निः स्यन्दान्युत्सभण्डलानि, विरलीभूतं कन्दमूलफलम् अवहीना कथाः गलिताः कल्याणोत्सवक्रियाः, बहुलीभूतानि तस्करकुलानि, अन्योऽन्यमभक्षयन्प्रजाः, पर्यलुण्ठन्नितस्ततो बलाका पाण्डुराणि नरशिरः कपालानि। ॥ दशकुमारचरित ॥

बाणभट्ट

जीवन वृत्त- संस्कृत साहित्य-जगत् में एकमात्र बाण ही ऐसा कवि है जिसने अपने विषय में स्वयं पर्याप्त जानकारी दी है तथा जिसके विषय में अनेक पुष्ट बहिरङ्ग प्रमाण भी उपलब्ध हैं। हर्षचरित के प्रथम तीन उच्छ्वासों में तथा कादम्बरी की प्रस्तावना के श्लेकों में बाण का जीवन परिचय पाठकों को मिल जाता है। इसके अनुसार बाणभट्ट का जन्म वात्स्यायन वंश के ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके वृद्ध प्रपितामह कुबेर बड़े कर्मकाण्डी विद्वान् थे। कुबेर के चार पुत्रों में से एक का नाम पाशुपति था। पाशुपति के पुत्र अर्थपति के ग्यारह पुत्रों में एक पुत्र चित्रभानु थे। इन्हीं चित्रभानु से राजदेवी नामक

पत्नी से बाण का जन्म हुआ था । शैशव में ही मातृ-वियोग के कारण पिता को बाण की मातृता करनी पड़ी । चौदह वर्ष की अवस्था में पिता की छत्र-च्छाया भी बाण से हट गयी । अभिभावक के अभाव में बाण उच्छृङ्खल होकर घूमने लगे । कुछ साथियों को लेकर पिता की सम्पत्ति का क्षय करते हुए बाण देशाटन करने लगे । सम्राट हर्षवर्धन के भाई कृष्ण के द्वारा भेजे गये पत्र से हर्ष की नाराजगी का पता लगने पर बाण वापिस लौटे और राजद्वार पहुँचकर हर्ष से मिले । सम्राट ने पहले तो धूर्त कहकर बाण की ओर से दृष्टि हटा ली किन्तु बाद में उनकी विद्वत्ता से प्रसन्न होकर आश्रय प्रदान किया । सभाकवि के रूप में पर्याप्त काल तक सम्मानित रहकर बाण घर लौटे और हर्षवर्धन के विषय में अनेक लोगों द्वारा समाचार पूछे जाने पर 'हर्षचरित' गद्य काव्य की रचना कर डाली । किंवदन्ती के आधार पर बाण को हर्ष के दरबारी कवि मयूर का जामाता बताया जाता है किन्तु विद्वानों को इसमें सदेह है । किंवदन्ती के ही आधार पर बाण के कई पुत्र थे जिनमें से एक ज्योतिषी तथा एक साहित्यविद था । जीवन के अन्तिम क्षणों में अपनी अधूरी रचना कादम्बरी की पूर्ति के लिए बाण ने सामने खड़े ठूंठ वृक्ष को लक्ष्य बनाकर वाक्य रचना के बहाने से दोनों की परीक्षा लेकर 'शुष्को वृक्षस्तिष्ठत्यग्रे' बोलने वाले पुत्र को कार्यभार न सौंपकर 'नीरसस्तरुरिह विलसति पुरत' वाक्य के प्रयोक्ता छोटे को सहृदय जानकर कादम्बरी की पूर्ति का भार सौंपा था ।

समय---सम्राट् हर्षवर्धन का सभाकवि होने के नाते बाण का समय ईसा की सप्तमी शताब्दी का पूर्वार्ध निश्चित है क्योंकि हर्षवर्धन का राज्यकाल ६०६ ई० से ६४५ ई० तक है । चीनी यात्री ह्वेनसांग ने ६२९ ई० ६४५ ई० तक भारत में रहकर उत्तर भारत के इस सम्राट् का सविस्तार वर्णन किया है । किन्तु बाण का नामोल्लेख तक नहीं किया इससे कुछ विद्वान् यह अनुमान लगाते हैं कि या तो ह्वेनसांग के भारत में आने से पूर्व ही बाण की मृत्यु हो चुकी थीं अथवा उस काल में बाण का राजदरबार से सम्बन्ध विच्छेद हो चुका था । विच्छेद चाहे सैद्धान्तिक मतभेद के कारण हुआ हो चाहे पुलकेशी द्वितीय से हर्ष के पराजित होने पर । कुछ भी हो आचार्य वामन (७७९-८१३ ई०) ने कादम्बरी के दीर्घ समास वाले वाक्य को उद्धृत किया है तथा रुद्रट (८००-८५० ई०) ने कादम्बरी तथा हर्षचरित के आधार पर ही कथा व आख्यायिका

की परिभाषा दी है, इससे यह सिद्ध होता है कि बाण सातवीं शताब्दी तक बहुत प्रसिद्धि पा चुके थे और उनके गद्य-काव्य लक्षणकारों के लिये उद्धरणीय कोटि में आ चुके थे।

रचनायें— बाणभट्ट की तीन रचनायें आज उपलब्ध हैं, (१) हर्षचरित, (२) कादम्बरी तथा (३) चण्डीशतक। इनमें पिछला ग्रन्थ भगवती की स्तुति में लिखा गया है जिसमें १०० श्लोक हैं। गाढबन्ध शैली का प्रयोग इनमें किया है। वस्तुतः बाण के यश शरीर में जरामरण के भय को सर्वथा निरस्त करने वाली कृतियों के रूप में हर्षचरित और कादम्बरी आज साहित्य जगत् में मूर्धन्य स्थान प्राप्त कर चुकी हैं। इसके अतिरिक्त बाण के नाम से सूक्ति-ग्रन्थों तथा अलङ्कार-ग्रन्थों में अनेक पद्य उद्धृत देखकर इनके कुछ ग्रन्थों के कालकवलित होने का अनुमान लगाया जाता है। पार्वती परिणय नामक नाटक का सम्बन्ध भी बाण से जोड़ा जाता है जबकि उसका रचयिता वामन भट्टबाण (१४२० ई०) है। 'नलचम्पू' की टीका में चण्डपाल ने बाण के ही नाम से मुकुटताडितक नाटक का उल्लेख किया है किन्तु वह आज उपलब्ध नहीं है (१) रत्नावली, (२) प्रियदर्शिका तथा (३) नागानन्द नाटकों को धन लेकर हर्षवर्धन के लिए बाण द्वारा लिखने की कल्पना भी निराधार ही है क्योंकि इन नाटकों के रचयिता की सीमित कल्पना-शक्ति तथा परिमित शब्दज्ञान बाण के नवनवोन्मेषशाली चिन्तन तथा अक्षय शब्दकोष के सर्वथा प्रतिकूल है। बाणभट्ट यदि धन लेकर काव्य-विक्रय करता तो कादम्बरी को देकर अपार धनराशि ले लेता।

हर्षचरित— काव्यशास्त्रों में आख्यायिका के लिये दिये गये लक्षण प्रायः हर्षचरित में घट जाते हैं। इनका कथानक आठ उच्छ्वासों में विभक्त है। पहले दो उच्छ्वासों में बाण की आत्मकथा तथा शेष में सम्राट हर्ष का जीवन चरित वर्णित है। बाण की यह प्रथम गद्य-रचना है ओजः समासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम् के अनुसार कवि ने इस रचना में साहित्यिक नियमों के अनुसरण का ध्यान रखा है। नियमानुसरण की प्रवृत्ति से इस काव्य की भाषा तथा शैली में अपेक्षित निखार नहीं आ पाया है। हर्ष के ऐतिहासिक व्यक्तित्व से सम्बद्ध होने से भी इसमें तथ्य तथा कल्पना दोनों का सम्मिश्रण विद्यमान है। हर्ष की अपेक्षा हर्षयुग का सच्चा चित्र अवश्य ही बड़ी निर्भीकता से इसमें प्रस्तुत

किया गया है। तत्कालीन सामाजिक सांस्कृतिक तथा प्राकृतिक स्थिति का सूक्ष्म एवं विषद वर्णन हर्षचरित की अपनी विशेषता है। राज्य-व्यवहार की भाषा और रीति का, लोकजीवन के विश्वास और आचार का, कलाकारों की शिल्प विधि का अरण्य जीवन तथा परिव्राजक जीवन का जो चित्र यहाँ प्रस्तुत किया गया है वह सांस्कृतिक दृष्टि से बड़े ही मूल्य का है।

कादम्बरी—बाण की सर्वोत्कृष्ट कृति कादम्बरी है। पूर्वार्ध व उत्तरार्ध रूप में इसके दो भाग हैं। पूर्वार्ध बाण की रचना है और उत्तरार्ध उसके आदर्श पितृभक्त निःस्पृह पुत्र पुलिन की। शास्त्रकारों ने कथा गद्य काव्य के जो लक्षण बताते हैं वे प्रायः कादम्बरी में घटते हैं। या यों कहिये कि कथा के लक्षणों का आधार ही कादम्बरी है। इसका कथानक सर्वथा कल्पित तथा प्रतिपाद्य प्रेयसी लाभ हैं। कादम्बरी और चन्द्रापीड तथा महाश्वेता और पुण्डरीक के जन्म जन्मान्तर तक चलने वाले प्रेम का यह आख्यान है। प्रेम की आन्तरिक गम्भीरता का आदर्श यहाँ प्रस्तुत किया गया है। भाव और भाषा तथा शब्द और अर्थ का समुचित सामञ्जस्य बाण की इस कृति में दिखाई देता है। 'कादम्बरी' मूलतः काव्य है कथा तो वह केवल तन्त्र की दृष्टि से है, इसीलिये कवि को रसपरिपाक की जितनी चिन्ता यहाँ रही है उतनी कथा-प्रवाह की नहीं। इसका मुख्य रस शृङ्गार व नायक धीरोदात्त है। प्रियमिलन में बाधा यहा अपनी दुर्बलता के कारण मिले शापादि के फलस्वरूप है। कोई प्रतिबन्धक खल नायक यहाँ गृहीत नहीं हुआ है। इसका कथानक सुखान्त रूप में वर्णित है।

बाण की शैली—कविता कामिनी के पञ्चबाण महाकवि बाण ने अपने गद्य-काव्यों की रचना में जिस शैली का आश्रय लिया है। वह वस्तुतः भाव एवं कला तथा शब्द एवं अर्थ का समुचित गुम्फन लेकर अवतीर्ण हुई है। इस शैली ने उस मनोहर मालिक का स्वरूप धारण किया है जिसमें दाडिम से देदीप्यमान दीपक, मालती सी मादक उपमाएँ, पाटला सी प्रेक्षणीय उत्प्रेक्षा, सोनजुही सी सरल स्वभावोक्ति तथा शेफालिका सी सुहावनी परिसङ्ख्या एक सूत्र रस में परिप्रोत करके श्लेषमय सघन संघटना की गई है तथा जिससे सुशोभित होकर बाण की कविता कामिनी महाश्वेता की भाँति स्वय प्रियतम के पास अभिसरण करने को उत्सुक है और जिसके प्रथम दर्शन पर ही पाठक भी पुण्डरीक की भाँति आकृष्ट हुए बिना नहीं रहता।

रमणीय वर्ण-योजना कोमल-पदशय्या, प्रसंगानुरूप वाक्य-विन्यास, ओजस्विनी सशक्त भाषा, वक्रोक्तिमयी अभिव्यञ्जना प्रणाली एवं सर्वत्र रसप्रवणता आदि गुणों के कारण बाण की शैली 'संस्कृत गद्य साहित्य' में अपनी समता नहीं रखती। उत्तरवर्ती गद्य-लेखकों के लिये वह आदरणीय रही है। वर्ण्य-विषय को सजीव तथा प्रभावी बनाने के लिये ओजोगुण मण्डित दीर्घसमासान्त पदावली का प्रयोग जहाँ बाण ने किया है वहीं वार्तालाप या स्वगत कथन के रूप में छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग करके शैली की सरलता तथा प्रसङ्गानुकूलता प्रकट कर दी है। बाण किसी एक शैली का क्रीतदास नहीं है। उदाहरण के लिये -- महाश्वेता के वर्णन प्रसङ्ग में ७ विशेषणों में कन्यिका महाश्वेता का वैशिष्ट्य बताकर उसने जहाँ एक ओर कल्पना की उड़ान, सुन्दर बिम्बों की प्रदर्शनी, सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति, उदात्ततम वर्णन कौशल तथा दृढ़ धैर्य का परिचय दिया है वहीं उसके बाद चन्द्रापीड की मन स्थिति के वर्णन में लघुतर वाक्यों में भाषा की चुस्ती, शैली का सतुलन तथा भावों के प्रवाह सुस्पष्ट व्यक्त कर दिया है। इस प्रकार बाण ने पाञ्चाली शैली का आश्रय लिया है।

अलङ्कारों के प्रयोग बाण ने अपने कलाकार रूप को पूरी तरह चमका दिया है। वस्तु का पूर्णबिम्ब चित्रण करने के लिये उसने पहले स्वभावोक्ति के द्वारा वर्ण्य वस्तु के रूप की रेखायें खींची हैं, पुनः उपमा या उत्प्रेक्षा के द्वारा उन रेखाओं से रग भरा है, तत्पश्चात् कोरी चटक-मटक या बाहरी नक्कासी के प्रेमियों के लिये शाब्दीक्रीड़ा का सुनहरी पाउडर लगाया है। श्लेष, विरोधाभास तथा परिसंख्या के प्रयोग का पाउडर पुराने शाब्दक्रीडा कुतूहली पाठकों के लिये सर्वथा अनुकूल ही था। यह बात दूसरी है कि यह अकृत्रिम सौन्दर्य, सेवियों के लिये विशेष आकर्षक न हो।

बाण का शब्दकोष बहुत विशाल है, साथ ही शेष सिद्धि के लिये यत्र-तत्र अप्रचलित पद का प्रयोग भी हुआ है इसलिये कुछ आलोचकों ने बाण की शैली को एक जंगल के समान बताया है जिसमें मार्ग बनाने के लिये स्वयं झाड़ियों को काटना पड़ेगा फिर भी अप्रचलित शब्दों के भयंकर जंगली पशु उसे भयाकुल

करते मिलेंगे । वास्तव में भारतीय पौराणिक परम्पराओं से अपरिचित तथा संस्कृत साहित्य के अध्ययन से वञ्चित पाठक बाण के ग्रन्थो का रसास्वादन ले ही नहीं सकता । इतने ऊँचे स्तर के काव्य का पाठक भी उच्चस्तरीय ज्ञान वाला ही होना चाहिये । इसलिये अनभिज्ञता के कारण बाण की रचनाओं का यदि कोई रसास्वादन न कर सके तो इसमें रचना-शैली का दोष नहीं है ।

काव्य-प्रतिभा—प्रकृति वर्णन, चरित्र चित्रण, रूप-निरूपण, प्रणय प्रदर्शन तथा रस-परिपाक आदि की दृष्टि से काव्य-परीक्षा करने पर बाण की उस प्रतिभा के हमें दर्शन होते हैं, जिसके बल पर संस्कृत साहित्याकाश में भास्कर की भाँति देदीप्यमान रहकर उसने अनेक लोगों को प्रेरणा का प्रकाश दिया है । जिसके बल पर यह कवि पञ्चानन गम्भीर धीर गति के काव्यारण्य के प्रत्येक स्थल पर संचरण करता है ।

प्रकृति के मधुर तथा भीषण दोनों रूपों का समान भाव में बाण ने वर्णन किया है । महर्षि जाबालि के आश्रम का सात्विक मनोरम रूप तथा विन्ध्याटवी का भीषण दृश्य प्रस्तुत करने में उसे सफलता मिली है । तपोवन के प्रभावी वर्णन के लिए अपेक्षित सभी सात्विक सामग्री का संयोजन जहाँ अनुपम दृश्य उपस्थित कर देता है, वहीं विन्ध्याटवी का मानवीकरण करके विविध भाव-चित्रण भी कम आश्चर्यप्रद नहीं । उदय-अस्त, प्रकाश-अन्धकार, हेमन्त-निदाघ, नगर-श्मशान तथा सजल-मरु सभी विरोधी प्राकृतिक दृश्यों का विधान यथार्थता एवम् आदर्शोन्मुखता को ध्यान में रखकर वाण की रचनाओं में किया गया है।

पात्रों के चरित्र-चित्रण में वाण में अद्‌भुत क्षमता का परिचय दिया है। ऐतिहासिक, काल्पनिक, पुरुष स्त्री, मर्त्यलोकीय, गन्धर्वलोकीय तथा सुख-सम्पन्न विपत्तिग्रस्त दोनों परिस्थितियों वाले अनेक पात्रों की चारित्र्य सृष्टि कवि ने की है । पात्रों के अन्तस्तल में बैठकर तद्‌गत भावों को वाणी का रूप देने का प्रयास उसने किया है । प्रजापालक पराक्रमी राजा शूद्रक, ज्ञानवृद्ध महात्मा जाबालि, प्रेम धीर एवं कर्त्तव्यनिष्ठ राजकुमार चन्द्रापीड, कवि की सर्वश्रेष्ठ पात्रकृति एवं आदर्श प्रेमिका कादम्बरी तथा कवि की सुकुमार सृष्टि तपस्विनी महाश्वेता आदि पात्रों का आकर्षण चित्रण कलाकार कवि की तूलिका लेखनी से हुआ है । वैशम्पायन शुक की आत्मकथा के रूप में चारित्रिक सृष्टि

का क्षेत्र तिर्यग्योनि तक ले जाकर कवि ने अपना लोक वृत्तज्ञान का चमत्कारी परिचय दिया है। व्यापक ज्ञान की मार्मिक अभिव्यक्ति के लिये अपेक्षित सभी कोटी के पात्रों की सृष्टि बाण की अपनी विशेषता है।

रूप-निरूपण के माध्यम से कवि ने अपनी सौन्दर्य सृष्टि का परिचय कराया है। चाण्डाल कन्या, महाश्वेता, पत्रलेखा व कादम्बरी जैसे स्त्री-पात्रों के सर्वाङ्ग-रूप-चित्रण की भाँति कवि ने शूद्रक, जाबालि, चन्द्रापीड, पुण्डरीक तथा शबर सेनापति मातङ्ग सदृश पुरुष पात्रों का हृदयहारी रूप निरूपण भी किया है। सौन्दर्य-चित्रण में कवि ने कहीं भी कृपणता से काम न लेकर सारा कल्पना-कोष ही खोल दिया है। कादम्बरी के नख-शिख वर्णन में जिन अप्रस्तुतों का विधान किया गया है, वे उसे कामबाला तो प्रदर्शित करते ही है, पावन-सौन्दर्य सम्पन्न भी बताते हैं। वस्तुतः बाण की दृष्टि में रूप जादू नहीं है, कोई बन्धन नहीं है, वह विश्व जीवन का केन्द्र है। इसलिये एक रूप की सृष्टि करते समय उसे विश्वव्यापी रूप के दर्शन होने लगते हैं और यही कारण है कि अनेक अप्रस्तुतों की बाढ़ ऐसे प्रसङ्गों में उमड़ पड़ती है। ये अप्रस्तुत बाण की योजना के अनुसार आते हैं। कादम्बरी-वर्णन में वे कामोद्दीपक है तो महाश्वेता-वर्णन में पवित्र भावों के स्रष्टा। सौन्दर्य की सृष्टि में अलङ्कार भी पूर्ण साधक बन कर प्रयुक्त हुए हैं। रूपरेखा के अङ्कन में स्वाभाविक रङ्ग भरने में उपमा-उत्प्रेक्षा तथा पाउडर लगाने में श्लिष्ट परिसंख्या ने बाण का सर्वत्र साथ दिया है। स्थिर रूप का चित्रण तो कवि ने किया ही है रति-उत्साह भय-जुगुप्सा व शोक-क्रोध की उदयावस्था में तथा रोमोत्कम्प, स्वेद आदि भावों के झलकने पर बहिरङ्ग रूप परिवर्तन के चित्र भी कवि चित्रकार ने खींचे हैं। चन्द्रापीड को देखकर कादम्बरी का बाह्य रूप-चित्रण बाण के उत्तम प्रसङ्गों में से एक है। ससंभ्रम उत्थान सहसा गतिरोध, निःश्वास से अशुभ चाञ्चल्य, हृदय पर हाथ का जाना, आनन्दाश्रूपातन करतलकम्पन आदि का वर्णन कामयमाना का सजीव चित्र आँखों के आगे कर देता है।

प्रणय-प्रदर्शन में बाण की लेखनी ने जो सफलता पाई है वह कालिदास के अतिरिक्त किसी अन्य कवि को नहीं मिली है। प्रणय की महता तथा पवित्रता की जैसी परख बाण को है वैसी अन्य किसी कवि को नहीं हुई। प्रेमी-

प्रेयसी के परस्पर प्रथम दर्शन के उत्पन्न रागोद्बोध से लेकर प्रणय की परिपक्व दशा तक का मनोहारी वर्णन कवि ने कादम्बरी में किया है। महाश्वेता व कादम्बरी का प्रणय-चित्रण इसका प्रत्यक्ष निदर्शन है। महाश्वेता यदि प्रणय की प्रज्वलित दीपशिखा है तो कादम्बरी प्रणय का अन्तर्दाह। एक वेदना को वाणी मिली है, तो दूसरी को मूकत्व। किन्तु वाण के प्रणय ने मर्यादा की सीमा का कहीं उल्लङ्घन नहीं किया। जन्मजन्मान्तर में भी वह टूटा नहीं, हर किसी के रूपलावण्य को देखकर उसने आत्मसमर्पण नहीं किया। प्रणय की यह अनन्यता, वाण की आदर्शवादिता की पोषक है। उसकी महाश्वेता ने पुण्डरीक को ही प्रणय-निवेदन किया है। प्रेमी की मृत्यु के उपरान्त भी वह अटूट है। चन्द्रापीड का रूपलावण्य उसके प्रति स्नेह का कारण हो सकता है, प्रणय का नहीं। अभिज्ञान वैशम्पायन का प्रणय-निवेदन उसे डिगा नहीं सकता। राजकुमार चन्द्रापीड भी केवल कादम्बरी को देखकर मुग्ध है। पत्रलेखा या महाश्वेता के प्रति उसकी वासनात्मक आसक्ति तनिक भी नहीं होती। यह सब होथे हुए भी प्रणय को लौकिक काम मात्र के अतिरिक्त कोई अलौकिक भावना के रूप में वाण ने नहीं देखा। रूप प्रतिमा के प्रथम दर्शन पर ही सात्विकी एवम् अनुभावों की योजना उसने की है। वाण का प्रणय रूपनिरपेक्ष नहीं, रूप सापेक्ष ही है।

रस परिपाक ही वाण का मुख्य लक्ष्य है। कथाप्रवाह के निर्वाह की उसे उतनी चिन्ता नहीं जितनी रस-परिपाक की। तभी तो श्रेष्ठ आलोचक कादम्बरी को महाकाव्य-कोटि के शिल्पविधान का ग्रन्थ मानने लगे हैं। उसका मुख्य शृङ्गार है। शृङ्गार के संयोग-वियोग दोनों पक्षों का सर्वाङ्गपूर्ण सजीव चित्रण कवि की लेखनी से यहाँ हुआ है। कादम्बरी-चन्द्रापीड के परस्पर प्रथम दर्शन से उत्पन्न रागोद्बोध तथा कामकला से पहली बार परिचित मुग्धा नायिका के लज्जा व स्पृहाभाव का चित्रण करते हुए जिस अपह्नुति की योजना की गई है, वह भावपक्ष की पोषक ही बनकर आयी है, केवल वैचित्र्योत्पादक नहीं। इसके अतिरिक्त महाश्वेता पुण्डरीक के परस्पर प्रथम दर्शन की स्थिति में हार्दिक भावों की सफल अभिव्यक्ति तो वाण ने की है। महाश्वेता विलाप में भी कवि की ललित लेखनी का चमत्कार छिपा नहीं रहता। इस प्रकार

आलम्बन की रूपराशि का चित्रण करके सहृदय आश्रय की मनोदशा का अनुभाव वेदनीय वर्णन करते हुए कवि ने सर्वत्र रस-परिपाक का लक्ष्य पूरा करने का सफल प्रयास किया है। सफलता के कारण ही रससिद्ध कवीश्वरों में बाण को सम्माननीय स्थान प्राप्त है।

सुबन्धु, दण्डी तथा बाण के परवर्ती प्राचीन गद्यकाव्यकारो में (१ धनपाल (२) ओडयदव (वादीभसिंह) तथा वामनभट्ट बाण का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। इन लेखकों ने दण्डी की शैली का आदर्श होते हुए भी बाण की शैली के अनुकरण पर ही काव्य रचना की हैं। धनपाल (९७३ ई०) की तिलकमञ्जरी बाण की कादम्बरी के पूर्ण अनुकरण पर लिखी गयी कथा है। बाण की मण्डली होना कवि ने मुक्तकण्ठ से स्वीकार भी किया है। राजकुमार तिलका और राजकुमार समरकेतु के प्रेम की कथा इसमें वर्णित हैं। चित्र व प्रस्तर आदि कलाओं के कौशल का विस्तृत विवरण स्थान-स्थान पर इस कथा में दिया गया है।

ओडयदेव (१०वीं शती) का उपनाम वादीभसिंह (विरोधी रूपी हाथियों के लिये सिंह) था। इसका ग्रन्थ 'चिन्तामणि' कादम्बरी की ही प्रतिस्पर्धा का परिणाम है। राजकुमार जीवन्धर का जीवन-चरित्र इसमें वर्णित है। शुकनासोपदेश का निखरा हुआ रूप इस गद्यकाव्य में प्रस्तुत किया गया है।

वामनभट्ट बाण (१४२० ई०) का वेमभूपालचरित हर्षचरित के अनुकरण पर ही लिखा गया है। बाण की शैली का प्रभाव इसके पद में देखने को मिलता है। आरम्भ के चार अध्यायों में अपने आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा इसमें रघुवश के अनुकरण पर की गई। मधुर पद-विन्यास, सरस अलङ्कार योजना तथा गम्भीर अर्थव्यक्ति के कारण इस कवि को गद्यकवि 'सार्वभौम की उपाधि से विभूषित किया गया है।

१० वीं ११ वीं शताब्दी में कुछ कवियों ने शुद्ध गद्य-शैली छोड़कर गद्य-पद्य-मिश्रित शैली में काव्य-रचना आरम्भ कर दी थी जिसे 'चम्पू' कहा जाता है। शैली की दूसरी विधा होने के कारण उस शैली के लेखकों पर विचार करना अपेक्षित नहीं है। अतः अब केवल आधुनिक गद्यकाव्यकारों के सम्बन्ध में संक्षिप्त जानकारी कर लेना पर्याप्त है।

७. आधुनिक गद्यकाव्यकार

गद्यकाव्यों की विकास परम्परा में भारतीय राजनीति का मुस्लिमकाल हमारे लिये सन्तोषजनक नहीं रहा है। राज्यभाषा फारसी तथा लोकभाषा हिन्दी की ओर ही साहित्याकाश के सूर्य-चन्द्रों का कर प्रसार हुआ है। इस बीच में राजाओं के आश्रय में रहकर काव्य-रचना करने वाले संस्कृत कवियों की शैली भी प्राय: पद्यात्मक रही है। अंग्रेजी काल में भी कोई उत्साहवर्धक साहित्यिक सृष्टि नहीं हो पायी। फिर भी कुछ आधुनिक प्रतिभाशाली लेखकों ने गद्यकाव्यों की सृष्टि करके अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। उनकी प्रतिभा के बल पर ही गद्यकाव्यों की परम्परा का अविच्छिन्न रूप बताया जा सकता है। इनमें (१) पण्डित अम्बिकादत्तव्यास (२) हृषीकेष भट्टाचार्य तथा (३) पण्डिताक्षमाराव का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जा सकता है।

व्यास जी का लिखा गया 'शिवराजविजय' उपन्यासग्रन्थबाण की परिष्कृत शैली का निदर्शन है। कल्पना की विशदता तथा शैली की मनोरमता ने इस काव्य को अत्यन्त रमणीय बना दिया है। दण्डी घटनाबहुलता तथा बाण का वर्णन विस्तार यहाँ समान रूप से गृहीत है गौड़ी, पाञ्चाली तथा वैदर्भी रीति एवं माधुर्य, ओज तथा प्रसाद गुण का यहाँ सुन्दर प्रयोग देखने को मिलता है। प्राचीन शैली शिल्प तथा आधुनिक वर्ण्य-विषय ग्रहण करके व्यास जी ने बीच की बड़ी का काम किया है। वस्तुत: बाण की कादम्बरी के पश्चात् शिवराजविजयं ही ऐसी रचना है जिसने संस्कृत साहित्य के पाठकों के हृदय पर अपनी स्वरवर्णपदरुचिरता तथा रसभाववत्ता के कारण पूरा-पूरा अधिकार जमाया है।

हृषीकेशभट्टाचार्य ने संस्कृत गद्य में निबन्ध लिखने का सूत्रपात करके भावी लेखकों को नई दिशा प्रदान की है। निबन्धों में भी व्यङ्ग्य शैली का प्रयोग करके तो इन्होंने नये युग का ही आरम्भ किया है। इनके निबन्धों का संग्रह 'प्रगन्धमञ्जरी' प्राञ्जल व प्रवाहपूर्ण भाषा तथा सरस विनोदभरी शैली के माध्यम से आधुनिक सामाजिक कुरीतियों तथा समस्याओं के आधार पर बहुत अच्छा प्रकाश इन निबन्धों में डाला गया है। बाण की शैली का भी इन पर प्रत्यक्ष प्रभाव दृष्टिगत होता है।

पण्डिताक्षमाराव इस युग के प्रसिद्ध कहानीकार के रूप में ख्यातनामा है।

पञ्चतन्त्र वाली कहानी शैली से दूर सर्वथा आधुनिक शैली की प्रगतिवादी कहानियों का संस्कृत जगत् में आरम्भ करके इन्होंने अपने हृदय की उदारता व विशालता का परिचय दिया है। आधुनिक कहानी के मुख्य तत्त्व औत्सुक्य तथा उपन्यास के प्रमुख तत्त्व वैचित्र्य को लेकर लिखी गई इनकी कहानियाँ भाषा की प्रासादिकता तथा मधुरिमा के कारण पाठकों के आकर्षण का केन्द्र बनी हुई हैं। भाषा व शैली के प्राचीन आवरण को हटा कर आधुनिक नवीन शैली परिधान लेखकों की अपनी विशेषता है। सरल, समासरहित भाषा के प्रयोग की आधुनिक प्रवृत्ति का उनकी प्रत्येक कहानी में साक्षात्कार किया जा सकता है इस प्रकार आधुनिक युग पाश्चात्य साहित्य के सम्पर्क में आकर गद्य-साहित्य की जो उपन्यास कहानी तथा निबन्ध रूप में श्रीवृद्धि हो रही है, वह संस्कृत प्रेमियों के हृदय में आशा का ही संचार करती है। भावाभिव्यञ्जना की नई शैली तथा साहित्य की नई विधा लेकर संस्कृत भाषा का मनोरम उद्यान पवित्र, पुष्पित एवं फलित होता रहे, यही ईश्वर से प्रार्थना है।

८. गद्य-लेखकों में बाणभट्ट का स्थान

यों तो प्रत्येक लेखक की अपनी-अपनी विशेषतायें हुआ करती हैं, अपना-अपना दृष्टिकोण होता है, अपना-अपना पृथक् प्रतिपाद्य होता है और इन्हीं के आधार पर प्रत्येक का व्यक्तित्व किसी न किसी क्षेत्र में एक-दूसरे की अपेक्षा उत्कृष्ट तथा अपकृष्ट हो जाता है। साथ ही पारखी आलोचकों की अपनी रुचि के अनुसार आलोच्य में उत्कर्षापकर्ष जाना जाता है, फिर भी भावपक्ष-कलापक्ष शब्द अर्थ वस्तु व्यञ्जन सभी दृष्टि से सामूहिक प्रभाव के आधार पर सर्वजन-मान्य न सही, बहुजनमान्य निर्णय काव्यकारों के विषय में हुआ करते हैं। संस्कृत गद्यकारों में बाणभट्ट का सर्वश्रेष्ठ स्थान ऐसा ही सर्वजनमान्य निर्णय है। बाण के परवर्ती लेखक तो सर्वथा बाण के ऋणी हैं ही। ऋण का उपयोग भी वे कुशलता से नहीं कर पाये। प्रो० कीथ ने लिखा है कि वास्तव में परवर्ती ऐसी कोई भी रचना हमारे सम्मुख नहीं जो क्षणभर के लिये भी बाण की रचनाओं के समकक्ष रखी जा सके। जहाँ तक सुबन्धु व दण्डी को साथ रखकर बाण के स्थान निर्धारण का प्रश्न है इस सम्बन्ध में भी दो मत नहीं कि सुबन्धु के पथ का पथिक होने पर भी बाण की ऐसी निजी विशेषतायें हैं

जिसके बल पर निःसंकोच उन्हें सुबन्धु से पहला स्थान दिया जायगा। वस्तु वर्णन, कथा संघटन अभिव्यञ्जन-प्रणाली, प्रवणता, रुचिरालङ्कार-योजना आदि सभी क्षेत्रों में सुबन्धु को बाण ने पीछे छोड़ दिया है। सुबन्धु कलाबाज है तो बाण कलाकार सुबन्धु भाव दरिद्र है तो बाण भावधनी, सुबन्धु चमत्कारवादी कवि है तो बाण रससिद्ध कवीश्वर।

निःसन्देह दण्डी संस्कृत-गद्य-साहित्य में सशक्त यथार्थवादी शैली के जन्मदाता होने के कारण अत्यन्त सम्माननीय हैं। फिर भी वैदर्भी रीति के इस कलाकार की अपेक्षा वैदर्भी व गौडी दोनों के छोर छूते हुए पाञ्चाली रीति के प्रयोक्ता बाण का इतिहास उच्चतर ही माना जाता है। उत्तरवर्ती लेखकों के समक्ष दोनों शैलियों का आदर्श रहने पर भी प्रत्येक के द्वारा बाण की शैली को अपनाना यह सिद्ध करता है कि जिस संस्कृत समाज के लिये ये लेखक रचना करना चाहते थे, उन्हें बाण की शैली ही अच्छी लगती थी। वस्तुतः बाण की अपरिमित कल्पना शक्ति, अक्षय शब्द-भण्डार, अगाध शास्त्रज्ञान, मार्मिक जीवनानुभूति तथा वक्रोक्तिमय अभिव्यञ्जना आदि विशेषतायें उसे दण्डी से पूर्व स्थान दिला देती हैं। बाण का काव्य वाणी की साकार प्रतिमा है। ऐसे कवि को प्रथम स्थान मिलना उचित ही है।

६. शुकनासोपदेश का मूल्यांकन

'कादम्बरी' बाण की अनुभूतियों की सफल अभिव्यक्ति है। काल्पनिक कथावस्तु पर आधृत होने पर भी जीवन के व्यापक ज्ञान की मार्मिक अभिव्यक्ति यहाँ विभिन्न माध्यमों से हुई है। उज्जयिनी-नरेश तारापीड के वृद्ध मन्त्री शुकनास द्वारा राजकुमार चन्द्रापीड को उसके युवराज पद पर अभिषेक से पूर्व दिया गया यह उपदेश भी जीवन के व्यापक ज्ञान की अभिव्यक्ति का ही एक माध्यम है। उपदेश के पात्र की उपयुक्तता में भी किसी को कोई सन्देह नहीं है क्योंकि विषय रस के आस्वादन से दूर स्फटिकमणि के समान निर्मल हृदय वाले व्यक्ति में उपदेश का प्रभाव होता है और युवक चन्द्रापीड को उन सब परिस्थितियों में होकर गुजरना है, जो विकारों की जननी हैं।

दूरदर्शी बुद्धिमान् मन्त्री शुकनास ने युवावस्था के सर्वजनसुलभ उत्पातों का प्रभावी वर्णन करके राजलक्ष्मी तथा राजाओं पर उसका विशेष प्रभाव बताकर चन्द्रापीड को सावधान किया है कि यह लक्ष्मी राग-वक्रता मोहन-चञ्चलता एवं मद-निष्ठुरता आदि दुर्गुणों को जन्म से ही धारण किये हैं।

कुल, शील, ज्ञान किसी की परवाह न कर कुल्टा इधर-उधर घूमती रहती है। लाख प्रयत्न करने पर भी यह चञ्चलता चली ही जाती है। दुःख तो यह है। कि इस दुराचारणी के द्वारा जैसे तैसे अपनाये गये राजा लोग सब दुराचारों के घर बन जाते हैं और रागावश से बाध्य होकर ग्रहगृहीत भूताभिभूत पिशाच-ग्रस्त की भाँति आत्मा विस्मरण में पकड़कर अपनी पतन स्थिति का भी अनुभव नहीं कर पाते। साथ ही मिथ्यामाहात्म्य के गर्व से फूलकर माननीयों का नाम करना छोड़कर राजा लोग चापलूसी के चक्कर में फँसकर समझदार लोगों के उपहास का पात्र बन जाते हैं। अतः चन्द्रापीड को ऐसा प्रयत्न करना चाहिये जिससे यौवनप्रभव दोष तथा दुर्विनीता लक्ष्मी उसे अभिभूत न कर सके। यह समय उसके प्रतापी बनने का है. सिद्धादेश होने का है।

इस उपदेश में बाण की कल्पना, वैभव, साधिकार वर्णन सामर्थ्य तथा देशकालातीत उदात आदर्शभूत हो उठा है। छोटे-छोटे वाक्यों में सारसबस्य भरकर भाषा का सर्वाधिकार का कवि ने यहाँ परिचय दे दिया है। अर्जुन को दिया गया गीतोपदेश जैसे हर कल्याणाभिनिवेशी के लिये लाभप्रद है। हर तरुण के लिये 'शुकनासोपदेश, भी इसी प्रकार प्रकाशस्तम्भ बनकर सन्मार्गदर्शी का कार्य करता है।

—:o:—

महाकविबाणविरचित!

शुकनासोपदेशः

(कादम्बरीतः)

शुकनासोपदेशः

(१) एवं समतिक्रामत्सु केषुचिद्दिवसेषु राजा चन्द्रापीडस्य यौवराज्याभिषेकं चिकीर्षु, प्रतीहारानुपकरुणसम्भार संग्रहार्थमादिदेश। समुपस्थितयौवराज्याभिषेकञ्च तं कदाचिद् दर्शनार्थमागतमारूढ-विनयमपि विनीततरमिच्छन् कर्तुं शुकनासः सविस्तरमुवाच—



हिन्दी अनुवाद—इस प्रकार कुछ दिन बीतने पर चन्द्रापीड का युवराज पद पर अभिषेक करने के इच्छुक राजा तारापीड ने द्वारपालों को सामग्री-समूह एकत्र करने के लिए आदेश दिया। किसी दिन दर्शन करने के लिए (शुकनास मन्त्री के समीप) आये हुए उस चन्द्रापीड को जिसका यौवराज्य अभिषेक होने वाला था, विनयी होने पर भी अधिक विनयी बनाने की इच्छा से शुकनास ने विस्तार सहित कहा—



व्याख्या—**एवम्**=इस प्रकार, अर्थात् अपनी ताम्बूल पत्रवाहिनी पत्रलेखा का सोते, जागते, उठते हर समय सान्निध्य प्राप्त करके उसे प्रीति तथा विश्वास का पात्र बनाकर जीवन बिताते हुए। **केषुचिद्दिवसेषु समतिक्रामत्सु**= (सम्√अति+क्रम्+शतृ) कुछ दिन बीतने पर। यहाँ भावलक्षणा सप्तमी है। जिस कर्त्ता की क्रिया से दूसरी क्रिया लक्षित हो उसमें सप्तमी विभक्ति होती है (यस्य च भावेन भावलक्षणम्)। **यौवराज्याभिषेकम्**=युवा चासौ राजा युवराजः तस्यकर्म युवराज्यम् (युवराज+ष्यञ) तस्मिन् तस्मैवा अभिषेकः यौवराज्याभिषेकः तम्। युवराज कर्म के निमित्त शास्त्रीय विधि से किया जाने वाला स्नान। **चिकीर्षु**=(√कृ+सन्+उ) करने का इच्छुक। **प्रतीहारान्**=द्वारपालों को। प्रतीहार शब्द का मूल अर्थ है; द्वार का रक्षक होने से लक्षणा के द्वारा इसका द्वारपाल अर्थ हो जाता है। **उपकरणसम्भार-**

संग्रहार्थम् = उपकरणानां सम्भारः उपकरणसम्भारः, तस्य संग्रहः उपकरण-सम्भारसंग्रहः, तस्मैः इति (नित्यसमास)। अभिषेक की सामग्री का समूह एकत्र करने के लिए।

समुपस्थितयौवराज्याभिषेकम् = समुपस्थितः (सम् + उप + √स्था + क्त) यौवराज्याय अभिषेकः यस्य तम्। जिसका यौवराज्याभिषेक होने वाला है। 'समुपस्थितः' पद में उपस्थिति क्रिया के भूतकालिक न होने पर भी 'आदि-कर्मणि निष्ठा वक्तव्या' के नियमानुसार 'क्त' प्रत्यय हुआ है। निकट भविष्य में सम्पन्न होने वाली क्रिया का द्योतन करने के लिए व्यवहार में भूतकाल जैसा प्रयोग होता ही है; जैसे 'अब किया' यह वाक्य भूतकाल के लिए नहीं, निकट भविष्य के लिए ही है। आरूढविनयम् = आरूढः (आङ् + √रुह् + क्त) विनयाय तम्। विनयसम्पन्न को। विनय = शास्त्रविहित आचार, लोकाचार अथवा विनम्रता। विनीततरम् = अतिशयेन विनीतः विनीततरः तम्। पहले की अपेक्षा अधिक विनयसम्पन्न सामान्यतः दो में से किसी एक का अतिशय बताने के लिए तरप् प्रत्यय हुआ करता है। विनीततर शब्द में धर्मी चन्द्रापीड को किसी अन्य की अपेक्षा अधिक विनीत न बताये जाने पर भी पूर्वोत्तर अवस्था के आधार पर भिन्न मानकर तरप् प्रत्यय हुआ है। कर्तुम् = (√कृ + तुमुन्) इच्छन् (√इष + शतृ) बनाने की इच्छा से। 'इच्छन्' पद में जो शतृ प्रत्यय हुआ है वह मुख्य 'उवाच' क्रिया के कारण रूप इच्छा अर्थ को बताने वाली इष् धातु से 'लक्षणहेत्वोः क्रियायाः' इस विशेष नियम के अनुसार हुआ है, 'इच्छा करता हुआ' इस अर्थ में नहीं; क्योंकि इच्छा रूप कारण पहले तथा वचन रूप कार्य बाद में हुआ है, जबकि सामान्य रूप में शतृप्रत्ययान्त तथा पूर्वकालिक क्रियाएँ एक साथ ही होनी चाहियें। सविस्तारम् = विस्तरेण सह विस्तार सहित संस्कृत भाषा में वाणी के फैलाव को बताने के लिए 'विस्तार' शब्द का प्रयोग होता है, जबकि वस्त्र के फैलाव के लिए 'विस्तार' शब्द प्रचलित है। आज हिन्दी में दोनों अर्थों में विस्तार चालू है।

(२) तात चन्द्रापीड विदितवेदितव्यस्याधीतसर्वशास्त्रस्य ते नाल्प-मप्युपदेष्टव्यमस्ति। केवलञ्च निसर्गत एवानुभेद्यमरत्नालोकाच्छेद्य-

मप्रदीपप्रभापनेयमतिगहनं तमो यौवनप्रभवम् । अपरिणामोपशमो दारुणो लक्ष्मीमदः । कष्टमनञ्जनवर्तिसाध्यमपरमैश्वर्यतिमिरान्धत्वम् । अशीशिरोपचारहार्योऽतितीव्रो दर्पदाहज्वरोष्मा । सततममूलमन्त्रगम्यो । विषमो विषयविषास्वादमोहः । नित्यमस्नानशौचबाध्यो बलवान् रागमलावलेपः । अजस्रमक्षपावसानप्रबोधा घोरा च राज्य सुखसन्निपात निद्रा भवतीति । विस्तरेणाभिधीयसे ।



हिन्दी अनुवाद—प्रिय चन्द्रापीड, तुमने जानने योग्य (सब कुछ) जान लिया है; सब शास्त्र पढ़ रखे हैं; अतः तुम्हारे लिए तनिक भी उपदेश देने योग्य विषय नहीं है. तथापि, यौवन से उत्पन्न (अविवेक रूपी) अन्धकार स्वभाव से ही अत्यन्त सघन होता है; जो न सूर्य से भेदा जा सकता है, न मणियों की कान्ति से नष्ट किया जा सकता है और न दीपकों के प्रकाश से दूर किया जा सकता है । धन से उत्पन्न नशा ऐसा तीक्ष्ण होता है जो अन्तिम अवस्था में भी शान्त नहीं होता है । ऐश्वर्यरूपी तिमिर रोग से उत्पन्न अंधापन दूसरे ही प्रकार का होता है, जो कष्टदायक तथा सुरमे की सलाई से भी ठीक नहीं किया जा सकता । अभिमानरूपी दाहक ज्वर की गर्मी अत्यन्त तीक्ष्ण होती है; जो शीतल उपचारों से भी दूर नहीं की जा सकती । विषयरूपी विष के सेवन से उत्पन्न मूर्च्छा ऐसी विकट होती है, जिसे निरन्तर जड़ी-बूटी व मन्त्रों के प्रयोग से भी नहीं हटाया जा सकता । आसक्तिरूपी मल का लेप ऐसा प्रबल होता है जिसे नित्य स्नान व शुद्धि से भी नष्ट नहीं किया जा सकता और राज्यसुख संयोगरूपी निद्रा ऐसी गहरी होती है जिसमें कभी रात्री की समाप्ति पर भी जागरण नहीं होता, इसलिए तुम से विस्तार से कह रहा हूँ ।

व्याख्या—तात = प्रिय । 'पूज्ये पितरि पुत्रे व तातशब्दः स्मृतो बुधैः' इत्यादि प्रमाणों के आधार पर तात शब्द का प्रयोग पहले पूजनीय व्यक्ति, पिता तथा पुत्र के लिए होता था, किन्तु आज इसका अर्थ-विस्तार होकर सभी छोटे-बडे प्रियजनों के लिए प्रयोग होने लगा है । 'अस विचार जिय जागहु ताता' में

राम ने अनुज लक्ष्मण के लिए तात शब्द का प्रयोग किया है। तात का ही विकृत रूप 'ताऊ' या 'चाचा' पितृतुल्यों के लिए प्रयुक्त होता है। **विदितवेदितव्यस्य**=विदितम् (√विद्+क्त वेदितव्यम्) (√विद्+त यत्) येन तस्य। जिसने जानने योग्य (सब कुछ) जान लिया है। **वेदितव्य**=जानने योग्य। **अधीतसर्वशास्त्रस्य**=अधीतानि (अधि+इङ्+क्त) सर्वाणि शास्त्राणि येन तस्य जिसने सब शास्त्र पढ़ लिये हैं। **ते**=तुम्हें। युष्मद् शब्द के षष्ठी के एकवचन 'तव' के स्थान पर 'ते' का प्रयोग भी चलता है। यहाँ चतुर्थी विभक्ति के अर्थ में षष्ठी का प्रयोग होता है। **उपदेष्टव्यम्**=(उप+√दिश्+तव्यत्) उपदेश करने योग्य विषय।

केवलञ्च=फिर भी। सामान्यत: 'च' शब्द का प्रयोग किन्हीं दो को जोड़ने के लिए होता है; किन्तु कभी-कभी विरोध या विभिन्नता प्रकट करने के लिए भी यह प्रयुक्त होता है; जैसे—'शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहु:, यह आश्रमस्थल शान्त है, फिर भी भुजा फड़क रही है। शकुन्तला नाटक की इस पंक्ति में आश्रम की शान्तता तथा भुजस्फूरण में विरोध या विभेद प्रदर्शन के लिए 'च' प्रयुक्त हुआ है। ऐसे स्थलों पर 'च' का अर्थ 'फिर भी' या 'तथापि' होता है। **निसर्गत:**=स्वभाव से। निसर्ग का अर्थ है सृष्टि, और सृष्टि का मूल कारण है प्रकृति। अत: लक्षणा से निसर्ग शब्द का अर्थ प्रकृति या स्वभाव हो गया है। **अभानुभेद्यम्**=न भानुना भेद्यम् (√भिद्+ण्यत्) जो सूर्य से न भेदा जा सके **अरत्नालोकोच्छेद्यम्**=न रत्नानाम् आलोकेन उच्छेद्यम् (उत्+√छिद्+ण्यत्) जो मणियों की कान्ति से नष्ट न किया जा सके। **अप्रदीपप्रभापनेयम्**=न प्रदीपानां प्रभया अपनेयम् (अप्+√नी+ण्यत्) जो दीपकों की प्रभा से दूर न किया जा सके।

यौवनप्रभवम्—यौवनं प्रभव: यस्य तत्। यौवन जिसका उत्पत्ति स्थान है। **अपरिणामोपशम:**=न परिणामे उपशम: यस्य स:। अन्ति अवस्था में भी जिसकी शान्ति नहीं होती; हर नशे का कुछ निश्चित समय होता है। समय जब अन्तिम क्षणों के रूप में होता है तो नशा उतर जाता है, किन्तु लक्ष्मी का नशा मरते दम तक भी नहीं उतरता। **लक्ष्मीमद:**=लक्ष्म्या: मद:। धन का नशा।

कष्टम् = कष्टदायक। **अनञ्जनवर्तिसाध्यम्** = न अञ्जनस्य वर्त्या साध्यम् (√सध् + णिच् + यत्) जो सुरमे की बत्ती से साध्य नहीं। **ऐश्वर्यतिमिरान्धत्वम्** = ऐश्वर्यम् (ईश्वर + ष्यञ्) एव तिमिरम् तेने अन्धत्वम्। ऐश्वर्यरूपी तिमिर रोग से होने वाला अन्धापन। तिमिर नामक नेत्र-रोग से जो अन्धकार आँखों के आगे आता है, उसे बिल्ली की चर्बी आदि से बने सुरमे की बत्ती से दूर किया जा सकता है, किन्तु ऐश्वर्य से उत्पन्न विवेकहीनतारूपी अन्धकार की कोई दवा नहीं।

अशिशिरोपचारहार्यः = न शिशिरैः उपचारैः हार्यः (√हृ + ण्यत्) जो शीतल उपायों से भी दूर न किया जा सके। **दर्पदाहज्वरोष्मा** = दर्पः एव दाहज्वरः तस्य ऊष्मा। अभिमानरूपी तेज बुखार की गर्मी।

सततम् — निरन्तर। **अमूलमन्त्रागम्य** = न मूलैः मन्त्रैश्च गम्यः (गम् + यत्) जो जड़ी-बूटियों और मन्त्रों से भी न हटाया जा सके। **विषयविषास्वादमोहः** = विषयाः एव विषम् विषयविषम् तस्य आस्वादेन मोहः। विषयरूपी विष के उपभोग से (उत्पन्न) मूर्च्छा।

अस्नानशौचबाध्यः = न स्नानेन शौचेन च बाध्यः (बाध् + ण्यत्) जो स्नान व शुद्धि के द्वारा भी दूर न किया जा सके। **रागमलावलेपः** = रागः एव मलः तस्य अवलेपः। विषयसक्ति रूपी मल का लेप।

अजस्रम् — न जस्रम् (√जस् + र) अजस्रम्। निरन्तर सदा। **अक्षपावसानप्रबोधा** = न क्षमायाः अवसाने प्रबोधः यस्यां सा। रात बीतने पर भी जिसमें जागरण नहीं होता। **घोरा** = गहन, गहरी। **राज्यसुखसन्निपातनिद्रा** = राज्यसुखानां सन्निपातः (सम् + नि + पत् + घञ्) राज्यसुखसन्निपातः, सः एव निद्रा। राज्य के सुखों की संयोगरूपी निद्रा। **सन्निपातः** = संयोग, एकत्र होना। इति—इसलिए। संस्कृत में इति शब्द का प्रयोग 'समाप्ति' अर्थ में तो पाया जाता है। 'हेतु' प्रकार आदि अर्थ भी कोशों में मिलते हैं। इति शब्दः स्मृतः हेतौ प्रकारादि समाप्तिषु। हलायुध कोश। **विस्तरेण** = विस्तार से विस्तारपूर्वक। प्रकृति आदि शब्दों में तृतीया विभक्ति ही होती है इसलिए यहाँ तृतीया हुई है (प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्)। **अभिधीयसे** = (अभि + √धा, कर्मवाच्य + लट् मध्यमपुरुष, एकवचन) तुमसे कहा जा रहा है।

(३) गर्भेश्वरत्वमभिनवयौवनत्वमप्रतिमरूपत्वममानुषशक्तित्वञ्चेति महतीयं खल्वनर्थपरम्परा सर्वा। अविनयानामेकैकमप्येषामायतनम् किमुत समवायः। यौवनारम्भे च प्रायः शास्त्रजलप्रक्षालननिर्मलापि कालुष्यमुपयाति बुद्धिः। अनुज्झितधवलतापि सरागैव भवति यूनां दृष्टिः। अपहरति च वात्येव शुष्कपत्रं समुद्भूतरजोभ्रान्तिरतिदूरमात्मेच्छया यौवनसमये पुरुष प्रकृतिः।

हिन्दी अनुवाद—गर्भ से ही स्वामी हो जाना, नवयौवन का होना, अनुपम सौन्दर्य का होना तथा अलौकिक सामर्थ्य का होना, यह सब वास्तव मे अनर्थों की लम्बी कड़ी है। इनमें से एक-एक भी दुराचारी का घर है, फिर इन सबके समूह का तो कहना ही क्या ? यौवन के आरम्भ में प्रायः बुद्धिशास्त्र रूपी जल द्वारा धुलने से निर्मल होने पर भी मलिनता को प्राप्त हो जाती है। युवकों की दृष्टि सफेदी को न छोड़ने का रागयुक्त (लाल, अनुराग युक्त) हो जाती है। युवावस्था में रजोगुण के कारण उत्पन्न भ्रम वाला स्वभाव पुरुष को अपनी इच्छा से उसी प्रकार बहुत दूर खींच ले जाता है, जिस प्रकार धूलि के चक्कर से युक्त बवंडर सूखे पत्ते को।

व्याख्या—गर्भेश्वरत्वम्=(गर्भेश्वर+त्व) गर्भाद् एव ईश्वरः गर्भेश्वरः तस्य भावः गर्भ से ही स्वामित्व प्राप्त होना। राजा का पुत्र गर्भ में आते ही राज्य के स्वामित्व का अधिकारी होता है.। अभिनवयौवनत्वम्=अभिनव यौवन यस्य स अभिनवयौवनः तस्य भावः। नवयौवन होना। अप्रतिमरूपत्वम् =अविद्यमाना प्रतिमा तस्य तत् अप्रतिमम् (विद्यमानपदलोप) अप्रतिमं रूपं यस्य सः, तस्य भावः। अनुपम सुन्दरता होना। प्रतिमा=उपमा, समानता। अमानुषशक्तित्वम्=मनुष्याणाम् इयम् मानुषी, न मानुषी, अमानुषी, अमानुषी शक्तिः यस्य स तस्यः भावः। अलौकिक शक्ति होना। इति=इस प्रकार। खलु=वास्तव में, सचमुच। अनर्थपरम्परा=अनर्थानां परम्परा। एक से एक बढ़कर अनिष्टकारी, अनर्थों की कड़ी। एषाम्=इनमें से (पूर्ववर्णित गर्भेश्वरत्वादि में से)। यहाँ निर्धारण अर्थ में षष्ठी हुई है समुदाय में उसके एक देश को

पृथक् करना निर्धारण होता है और निर्धारण जिस समुदय से होता है, उसमें षष्ठी या सप्तमी विभक्ति होती है। (यतश्च निर्धारण)। **एकैकम्**=एकम् (वीप्सा अर्थ में द्वित्व) प्रत्येक, अलग-अलग। **अविनयानाम्**=उद्दण्डताओं का। **आयतनम्**=निवास स्थान। **किमुत**=क्या कहना ? बात वही क्या है। किम् शब्द के साथ उत जोड़ देने से 'किमुत' का प्रयोग एक अव्यय की भाँति ही संस्कृत में होने लगा है। इसके पश्चात् आने वाले पद में वही विभक्ति होती है जो पूर्व वाक्यों के उद्देश्य में रहती है। यहाँ पूर्ववाक्य में 'एकैकम्' पद उद्देश्य है और उसमें प्रथमा है; अतः किमुत के पश्चात् 'समवायः' पद में भी प्रथमा ही है। **समवायः**=समूह।

यौवनारम्भे—यौवनस्य आरम्भे। यौवन के आरम्भ में, चढ़ती जवानी में, **प्रायः**=बहुधा। प्रायः शब्द का प्रयोग साधारण नियम बताने के लिए हुआ करता है। इसमें प्रथमा या तृतीया विभक्ति होती है। **शास्त्रजलप्रक्षालननिर्मला**=शास्त्रमेव जलम्, तेन प्रक्षालनम् तेन निर्मला। शास्त्र रूपी जल के द्वारा धुलने से निर्मल। **कालुष्यम्**=(कलुष+ष्यञ्) मलिनता, सद्-असद् ज्ञान-शून्यता।

अनुज्झितधवलता=न उज्झिता धवला यया सा जिसने श्वेतता (सफेदी) नहीं छोड़ी है। **सराग**=रागेण सह (बहुव्रीहि)। लाल, अनुराग युक्त। सफेदी न छोड़ते हुए भी लाल हो जाना विरोध है, जिसका परिवाद या समाधान यों है कि युवकों की दृष्टि सुन्दर स्त्रियों के प्रति अनुराग वाली हो जाती है।

यौवनसमये=यौवनस्य समये। जवानी की अवस्था में। **समुद्भूतरजोभ्रान्तिः**=यह पद वात्या और प्रकृति दोनों का विशेषण है; अतः इसका विग्रह दो प्रकार से होगा। **वात्यापक्ष में**—समुद्भूता (सम्+उद्+√भू+क्त+टाप्) रजसां भ्रान्तिः यस्यां सा। जिसमें धूलि का चक्कर बन गया है। **प्रकृति पक्ष में**—समुद्भूता रजसा भ्रान्तिः यस्यां सा। जिसमें रजोगुण के कारण भ्रम पैदा हो गया है। **वात्या**=वातानां समूहः (वात+यत्+टाप्) बवंडर आँधी। **इव**=समान इस शब्द का प्रयोग प्रायः उपमा देने के लिए होता है और उपमान के बाद आता है। इव से जुड़े उपमान और उपमेय एक ही विभक्ति में आते हैं। **प्रकृतिः**=स्वभाव। **आत्मेच्छया**=आत्मनः इच्छया। अपनी

इच्छा से। शुष्कपत्र को दूर उड़ा ले जाने में जैसे बवंडर सर्वथा समर्थ है, पुरुष का स्वभाव भी पुरुषों को अपनी इच्छा से कहीं का कहीं ले जाता है। **अति-दूरम्** = बहुत दूर, यहाँ दूरम् पद द्वितीया है। दूर तथा निकट अर्थ वाले शब्दों में द्वितीया, तृतीया या पञ्चमी किसी भी विभक्ति का प्रयोग किया जा सकता है। ग्रामस्य दूरम्, दूरेण, दूराद् वा (दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च)।



(४) इन्द्रियहरिणहारिणी च सततदुरन्तेयमुप भोगमृगतृष्णिका। नवयौवनकषायितात्मनश्च सलिलनीव तान्येव विषयस्वरूपाण्यास्वाद्यमानानि मधुरतराण्यापतन्ति मनसः। नाशयति च दिङ्मोह इवोन्मार्गप्रवर्तकः पुरुषमत्यासङ्गो विषयेषु। भवादृशा एव भवन्ति भाजनान्युपदेशानाम्। अपगतमले हि मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकरगभस्तयो विशन्ति सुखेनोपदेशगुणाः।



हिन्दी अनुवाद— इन्द्रियरूपी हरिणों को हरने वाली वह विषयभोगरूपी मृगतृष्णा परिणाम में सदा दुःख देने वाली है। नवयौवन से कसैले (रागद्वेष युक्त) अन्तःकरण वाले व्यक्ति के मन को वे ही भोगे जाने वाले विषय (कसैले मुख वाले व्यक्ति के मन को) जल के समान अधिक मधुर प्रतीत होते हैं। कुमार्ग की ओर ले जाने वाला दिशाभ्रम की भाँति (कुमार्ग की ओर ले जाने वाला) विषयों में अत्यधिक लगाव पुरुष को नष्ट कर देता है। आप जैसे ही उपदेशों के पात्र होते हैं; क्योंकि निर्मल स्फटिक मणि में चन्द्रकिरणों की भाँति निर्मल मन में उपदेशों के गुण आसानी से प्रवेश कर जाते हैं।



व्याख्या—इन्द्रियहरिणहारिणी = इन्द्रियाणी इव हरिणाः तान् हरतीति (ताच्छील्य अर्थ में णिनि) इन्द्रियरूपी हरिणों को लुभाने वाली। **उपभोगमृग-तृष्णिका** = उपभोगः एव मृगतृष्णिका। विषयभोगरूपी मृगमरीचिका। रेतीले मैदानों में तेज धूप पड़ने पर जो जल की लहरों जैसी भ्रान्ति होने लगती है उसे मृगतृष्णिका कहते हैं। पिपासु मृग जल समझकर उसके निकट पहुंचते हैं

तो निराश होना पड़ता है। पुनः ऐसी ही भ्रान्ति दूसरी ओर होने लगती है और अन्त में वहाँ भी दुःख उठाना पड़ता है। सततदुरन्ता = दुखम् अतः यस्याः सा दुरन्ता, सततं सततदुरन्ता—सदा दुःखद परिणाम वाली।

नवयौवनकषायितात्मनः = नवेन यौवनेन कषायितः आत्मा यस्य सः नवयौवनकषायितात्मा तस्य। चढ़ती जवानी से कसैले अन्तःकरण वाले पुरुष के। **मनसः** = मन को। **आस्वाद्यमानानि** = (आङ् + √स्वाद् + कर्मवाच्य यक् + शानच्) भोगे जाते हुए। **विषयस्वरूपाणि** = विषयाणां स्वरूपाणि उपभोग की वस्तुएँ। **मधुरतराणि** = (मधुर + तरप्) अतिशयेन मधुराणि। अधिक मीठे। **आपतन्ति** = प्रतीत होते हैं।

उन्मार्गप्रवर्तकः = उन्मार्गे प्रवर्तकः (प्र + √वृत् + णिच् + ण्वुल्) कुमार्ग पर ले जाने वाला। **विषयेषु अत्यासङ्गः** = (अति + आ + √सञ्ज् + घञ्) विषयों में अत्यधिक आसक्ति। उन्मार्गप्रवर्तकः दिङ्मोहः (दिशां मोहः)। **इव** = जिस प्रकार दिशा के विषय में उत्पन्न भ्रम मनुष्य को गलत रास्ते पर ले जाकर नष्ट कर देता है। उसी प्रकार विषयों में अधिक अनुराग भी मनुष्य को विपरीत आचरण की ओर प्रवृत्त कर भ्रष्ट कर देता है।

भवादृशाः = आप जैसे, विषयों की ओर से अनासक्त तथा निर्मल चित्त वाले। **भाजनानि** = पात्र, योग्य। भाजन, पात्र आदि शब्द जब विधेय के रूप में प्रयुक्त होता है तो ये नित्य नपुंसकलिङ्ग में रहते हैं और प्रायः इनमें एकवचन का प्रयोग होता है। यहाँ भवादृशाः पद के वचन के आधार पर भाजन में बहुवचन का प्रयोग हुआ है।

अपगतमले = अपगतम् (अप् + √गम् + क्त) मलम् यस्मात् तस्मिन्। निर्मल मन में। **उपदेशगुणाः** = उपदेशानां गुणाः। शिक्षा के गुण। **स्फटिकमणौ** = स्फटिकश्चासौ मणिः तस्मिन्। स्फटिक, फटिक या बिल्लौर मणि में। **रजनिकरगभस्तयः** = रजनीं करोतीति रजनिकरः, रजनिकरस्य गभस्तयः। चन्द्रमा की किरणें। **सुखेन** = आसानी से। क्रिया का प्रकार बताने वाले शब्दों में सामान्यतः द्वितीया विभक्ति हुआ करती है; जैसे—मन्दं गच्छति, मधुरं वदति। किन्तु सुख आदि शब्दों में तृतीया विभक्ति भी होती है। प्रकृत्यादिभ्य

उपसंख्याम् । द्वितीया विभक्ति का प्रयोग देखिये—

सुखं जना शरत्समया इव भवादृशः मित्रस्य हृदयं हरन्ति ।—सुबन्धु

(५) गुरुवचनममलमपि सलिलमिव महदुपजनयति श्रवणस्थितं शूलमभव्यस्य । इतरस्य तु करिण इव शङ्खाभरणमानन शोभासमुदयमधिकतरमुपजनयति । हरत्यतिमलिनमन्धकारमिव दोषजातं प्रदोषसमयनिशाकर इव । गुरूपदेशः प्रशमहेतुर्वय—परिणाम इव पलितरूपेण शिरसिजजालममलीकुर्वन् । गुणरूपेण तदेव परिणमयति ।

हिन्दी अनुवाद—गुरु का उपदेश वाक्य निर्मल होता हुआ भी अभीष्ट व्यक्ति के कान में पड़ने पर वैसे ही अत्यधिक पीड़ा उत्पन्न करता है जैसे निर्मल होता हुआ भी कान में पड़ा हुआ जल, किन्तु वही (गुरुवचन) शिष्ट के (कान में पड़ा हुआ) मुख की शोभा में वैसे ही और भी अधिक वृद्धि कर देता है जैसी शङ्खों का गहना हाथी की मुख शोभा में । (गुरु का उपदेश) अत्यन्त मलिन दोषसमूह को वैसे ही दूर भगा देता है, जैसे प्रदोषकाल (सायंकाल) का चन्द्रमा नितान्त घोर अन्धकार को (अन्तःकरण की वृत्तियों को) शान्ति का कारण गुरु का उपदेश उसी दोषसमूह को निर्मल बनाता हुआ गुणरूप में वैसे ही बदल देता है जैसा बुढ़ापा केश समूह को स्वच्छ बनाता हुआ श्वेतरूप में ।

व्याख्या—**अमलम्**—विद्यमानं मलं यस्मिन् तत् (विद्यमान पद लोप) मलरहित, दोषरहित । **गुरुवचनम्**=गुरोः । **वचनम्**=गुरु का उपदेश वाक्य । **सलिलम् इव**=जल की भाँति । **अभव्यस्य**=भवभोगि भव्यः (भू यत्) न भव्यः अभव्य. तस्य । अशिष्ट व्यक्ति के । **श्रवणस्थितम्**=श्रवणेस्थितम् (√स्था+क्त) । कान में पड़ा हुआ ।

इतरस्य=दूसरे के, अशिष्ट व्यक्ति से अतिरिक्त साधु पुरुष के । **करिणः**=हाथी के । **शङ्खाभरणम्**=शङ्खानाम् आभरणम् । शङ्खों का गहना । **आनन-**

शोभासमुदयम् = आननस्य शोभा आननशोभा तस्या: समुदय:, तम् । मुख-सौन्दर्य की वृद्धि को । **उपजनयति** = उत्पन्न करता है ।

अतिमलिनम् = अन्धकारपक्ष में—बहुत गहन, दोष समूहपक्ष में—अधिक तमोगुणो । **दोषजातम्** = दोषाणां जातम् (√जन् + क्त) दोषों के समूह को । अमरकोश में 'जातिर्जतं तु सामान्यम्, जात शब्द का अर्थ जाति लिखा है । जाति व्यक्ति समूह को देखकर हो जात शब्द का प्रयोग समूह मात्र के लिए होने लगा है । **प्रदोषसमयनिशाकर:** = प्रदोषश्चासौ समय: प्रदोष समय: तस्य निशाकर: (निशां करोति) प्रदोषकाल का चन्द्रमा । **प्रदोष** = रात्रि के आरम्भ की दो घड़ी । इसे रजनीमुख भी कहते हैं । उस समय तारामण्डल भी उदित नहीं हो पाता; अत: अन्धकार की गहनता रहती है । अन्धकार की गहनता बताने के लिए ही प्रदोष समय का निर्देश किया गया है ।

प्रशमहेतु: = प्रशमस्य हेतु: । अन्त:करण की वृत्तियों की शान्ति का कारण । **गुरूपदेश:** = गुरो: उपदेश: । गुरु की शिक्षा । **तदेव** = उसी दोष-समूह को । **अमलीकुर्वन्** = समलम् अमल कुर्वन् इति अमलीकुर्वन् (अमल + च्वि + √कृ + शतृ) शुद्ध करता हुआ, निर्मल बनाता हुआ । **वय: परिणाम:** = वयस: परिणाम: । अवस्था का ढलाव, बुढ़ापा । **शिरसिजालम्** = शिरसि जायन्ते शिरसिजा. तेषां जालम् । केशों के समूह को । **पलितरूपेण** = पलित च तद् रूप पलितरूपं तेन । सफेद रंग में । केश समूह को निर्मल बनाने में सफेद रंग (पलितरूप) यहाँ साधन है; अत. उसमें भी तृतीया विभक्ति हुई है ।

---

(६) अयमेव चानास्वादितविषयरसस्य ते काल उपदेशस्य । कुसुमशरप्रहारजर्जरिते हि हृदि जलमिव गलत्युपदिष्टम् । अकारणञ्च भवति दुष्प्रकृतेरन्वय: श्रुत चाविनयस्य । चन्दनप्रभवो न दहति किमनल: ? किं वा प्रशमहेतनापि न प्रचण्डतरो भवति बडवानलो वारिणा ?

हिन्दी अनुवाद—और विषयों के रस के आस्वादन से दूर तुम्हारे लिए उपदेश का यही (उचित) समय है; क्योंकि कामदेव के बाणों के प्रहार के छिदे हुए हृदय में उपदेश जल की भाँति बह जाता है। श्रेष्ठ कुल या विद्या दुष्ट स्वभाव वाले व्यक्ति के विनय का कारण नहीं होती। चन्दन से उत्पन्न आग क्या जलाती नहीं? अथवा क्या शान्ति के कारण जल से भी समुद्र की आग और अधिक नहीं भभक उठती।



व्याख्या—अनास्वादितविषरसयस्य = न आस्वादित: (आ + √स्वाद + क्त)। विषयाणां रस: येन स: अनास्वादित विषय रस: तस्य। जिसने विषयों का रस नहीं चखा है। उसका। ते = तव, तुम्हारे लिए। उपदेशस्य—शिक्षा देने का। अयमेव काल: = यही उचित समय है।

कुसुमशरप्रहारजर्जरिते = कुसुमानि एव शरा: यस्य स: कुसुमशर: स्यात् शराणां प्रहारेण जर्जरिते—कामदेव के बाणों के प्रहार से छिदे हुए (हृदय) में। हृदि = हृदय में। कुसुमशर = कामदेव। कामदेव के बाण पाँच पुष्प माने जाते हैं। अरविन्दमशोकं च रसालं नवमल्लिका। नीलोत्पलं च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायका:। पुष्प का ही धनुष होने से कामदेव को पुष्पधन्वा भी कहा जाता है। उपदिष्टम् = (उप् + दिश् + क्त) उपदेश रूप में दिया गया विषय। जलमिव गलति = जल की भाँति बह जाता है, टिक नहीं पाता।

अन्वय—वंश, सत्कुल। श्रुतं वा = अथवा विद्या (शिक्षा)। दुष्प्रकृते: = दुष्टा प्रकृति: यस्य तस्य। दुष्ट स्वभाव वाले व्यक्ति के। विनयस्य = विनम्रता या सदाचार का। अकारण भवति = कारण नहीं होता। वस्तुत: जैसा स्वभाव बन जाता है उसमें परिवर्तन नहीं होता। कहा भी है— अतीत्य ही गुणान् सर्वान् स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते। स्वभावो दुरतिक्रम:।

स्वभावोनोपदेशेन शक्यते कर्तुमन्यथा॥ न स्वभावोऽत्र मर्त्यानां शक्यते कर्तुमन्यथा। इस वाक्य में 'अकारण भवति' का अर्थ है— 'कारण नहीं होता'। इस अर्थ में विधेय है 'नहीं'। जो समास में पड़कर गौण हो गया है, जबकि उसे विधेय होने के नाते प्रधान होना चाहिये। जिसका शुद्ध रूप होगा— 'कारणं न भवति'। इस प्रकार यहाँ पर विधेया विमर्श नामक दोष आ गया है।

चन्दनप्रभव: = चन्दनं प्रभव: यस्य स:। चन्दन है उत्पत्ति-स्थान जिसका, वह। **अनला** = नास्ति जलं यस्य, जिसकी तृप्ति न हो अर्थात् अग्नि। कहा भी है—नाग्निस्तृप्यति काष्ठानाम्। **किं न दहति ?** = क्या नहीं जलाती ? अर्थात् जलाती ही है। जिस प्रकार चन्दन जैसे शीतल काष्ठ से उत्पन्न होने पर भी आग जलाती है इसी प्रकार अच्छे कुल में उत्पन्न होने पर भी दुष्ट पुरुष दुष्टता ही करता है।

किं वा—अथवा क्या। **प्रशमहेतुना** = प्रशमस्य हेतु: = प्रशमहेतु: तेन। शान्ति के कारण से। **वारिणा** = (समुद्र के) जल से। **बडवानल:** = बडवाया: अनल:। समुद्र में रहने वाली अग्नि। पौराणिक परम्परा के अनुसार समुद्र-स्थित बडवा (घोड़ी) के मुख की अग्नि को बडवानल कहा जाता है। बताया जाता है कि अश्विनी नामक अप्सरा ने बडवा का रूप ग्रहण कर सूर्य के द्वारा गर्भ धारण किया था. वस्तुत: सूर्य की आशुगति वाली किरण समुद्र जल में प्रवेश करके ऊष्मा उत्पन्न करती है, उसे ही पुराणों में अश्विनी अप्सरा कहा है, ऊष्मा ही बल है। बलदायिनी होने से वही किरण बडवा है (डलयोरभेद:)। बडवा की ऊष्मा या अग्नि ही बडवानल है। अमरकोश में 'और्वानिले तु पातालम्' बडवानल को पाताल तथा मेदिनीकोश में 'पाताल बडवामुखम्' को बडवा मुख कहकर अधोमुखपाताल (समुद्रतल) में बडवानल की सत्ता सिद्ध की है। **न प्रचण्डतरी भवति** = अधिक नहीं भभक उठती ? अर्थात् भभकती है। तात्पर्य यह है कि समुचित उपायों से भी स्वभाव नहीं बदला जा सकता।

(७) गुरूपदेशश्च नाम पुरुषाणामखिलमलप्रक्षालनक्षमजलं स्नानम्, अनुपजात पलिता दिवैरूप्यमजरं वृद्धत्वम्, अनारोपितमेदोदोषं गुरूकरणम।' असुवर्णविरचनमग्राम्यं कर्णाभरणम्, अतीतज्योतिरालोक:, नोद्वेगकर: प्रजागर:। विशेषेण राज्ञाम्। विरला हि तेषामुपदेष्टार:।

हिन्दी अनुवाद—और गुरु का उपदेश पुरुषों के सम्पूर्ण मलों को धोने में समर्थ बिना जल का स्नान है, बालों की सफेदी आदि विरूपता उत्पन्न हुए बिना बुढ़ापे का बड़प्पन है। चर्बी बढ़ाये बिना गुरुता प्रदान करने वाला है, सोने से बना न होने पर भी सुघड़ कर्णभूषण है बिना चमक का प्रकाश है, बेचैनी उत्पन्न न करने वाला जागरण है, विशेष रूप से राजाओं के लिए, उपदेश देने वाले बहुत कम होते हैं।

व्याख्या— गुरूपदेश =गुरोः उपदेशः। गुरु की शिक्षा। नाम= निश्चय ही, वस्तुतः। नाम शब्द का सामान्यतः 'नाम' अर्थ में प्रयोग होता है। यह कहीं निश्चय, कहीं सम्भावना, कहीं क्रोध, कहीं निन्दा तथा कहीं बहाना अर्थ प्रकट करने के लिए भी प्रयुक्त किया जाता है। इसका किसी शब्द के साथ समास नहीं होता। 'संज्ञा' अर्थ को बताने वाला नामन् शब्द जो समास के अन्त में आया करता है, इससे पृथक् है। पुरुषाणाम्=पुरुषों के लिए। अखिलमलप्रक्षालनक्षमम् =अखिलाश्च ये मलाः अखिलमलाः तेषां प्रक्षालने क्षमम्। समस्त मलों को धो देने में समर्थ। अजलम् =अविद्यमान जल यस्मिन् तत्, जलरहित। जैसे जल स्नान से मनुष्य के शरीर का सारा मैल धुल जाता है वैसे ही गुरु के उपदेश से समस्त मानसिक विकार दूर हो जाते हैं; अतः गुरू-पदेश को जलरहित स्नान कहा गया है। इस वाक्य में आ 'पुरुषाणाम्' पद का नोद्वेगकरः प्रजागरः तक प्रत्येक वाक्य से सम्बन्ध है।

अनुपजातपलितादिवैरूप्यम् =पलितम् आदौ यस्य तत् पलितादि विरूपस्य भावः। वैरूप्यम् (विरूप + ष्यञ) न उपजातं (उप + √जन् + क्त) पलितादि वैरूप्यं यस्मिन् तत्। जिसमें की सफेदी विरूपता उत्पन्न नहीं हुई है। वृद्धावस्था के विकाररूप में सबसे पहले बालों में सफेदी ही उत्पन्न होती है। अजरम् =अविद्यमाना जरा यस्मिन् तत्। जरारहित, बिना वृद्धावस्था के। वृद्धत्वम =बड़प्पन, बुढ़ापा। सामान्यत् =वृद्ध होने पर केशों की पलितादि विक्रिया तथा देह में जीर्णता उत्पन्न हो जाती है, किन्तु गुरु की शिक्षा से मनुष्य ज्ञानी बनकर युवावस्था में भी वृद्धजनों जैसा सम्मान पाने लगता है। बड़े-बूढ़ों में उसकी गणना होने लगती है। मनु महाराज ने कहा भी है—न

तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिर: । यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवा: स्थविरं विदु: ।

अनारोपितमेदोदोषम्—न आरोपित: (आ + रुह् + णिक् + क्त) मेदस: दोष: येन तत् जिसने चर्बीदोष नहीं बढ़ाया है । **गुरूकरणम्** = अगुरो: गुरुकरणं गुरुकरणम् (गुरु + च्वि + कृ + ल्युट्) । गुरुता (महत्ता, भारीपन) उत्पन्न करने वाला । सामान्यत: शरीर में चर्बी बढ़ने से भारीपन आता है, किन्तु गुरूपदेश प्राप्त पुरुष को सब गौरव की दृष्टि से देखते हैं, उसकी बात में वजन होता है ।

असुवर्णविरचनम्—न सुवर्णेन विरचना यस्य तत् । जिसकी रचना सोने से नहीं हुई । **अग्राम्यम्** = न ग्राम्यम् (ग्राम + य) । सुन्दर, सुघड़ । ग्राम में बनी वस्तुओं को अनपढ़ या असुन्दर समझा जाता है, अत: ग्राम्य का अर्थ 'अश्लील' या गँवारू हो गया है । **कर्णाभरणम्** = कर्णयो: आभरणम् । कानों का अलंकार । कर्णभूषण सामान्यत: सोने से बनता है, किन्तु गुरु का उपदेश सुवर्णादि धातु-निर्मित न होने पर भी कानों की शोभा बढ़ाने वाला है ।

अतीतज्योति: = अतीतम् (अति + $\sqrt{}$इण् + क्त) ज्योति: यस्मात् स: । चमक-दमक रहित । **आलोक** = प्रकाश । यद्यपि गुरु के उपदेश में चमक-दमक नहीं है फिर भी वह ऐसा प्रकाश है, जो अज्ञान के अन्धकार में रहने वाले प्रत्येक विषय का साक्षात्कार करा देता है । अथवा गुरूपदेशरूपी प्रकाश सूर्य-चन्द्र आदि समस्त ज्योतियों से बढ़कर है । जिस वस्तु का ज्ञान इन ज्योति-पुञ्जों से नहीं हो पाता । उसका ज्ञान भी गुरूपदेश से हो जाता है । इस अर्थ में अतीतज्योति: पद में अतीत: ज्योतींषि इति अतीतज्योति: यह विग्रह होगा । **नोद्वेगकर:** — उद्वेगं करोतीति उद्वेगकर न उद्वेगकर: नोद्वेगकर: । बेचैनी उत्पन्न करने वाला । सामान्य: विरोधी अर्थ को बताने के लिए 'नञ्' पद का समास हुआ करता है और नञ् के न् का लोप होकर 'अ' बचता है । आदि स्वर वाले पदों के साथ नञ् समास होने पर स्वर के पूर्व नुट् का आगम होकर 'न' आने से 'अनश्व:' अनुद्वेग आदि पद बनते हैं, किन्तु नञ् के अतिरिक्त 'न' पद पृथक् भी है उसका समास होने पर न का लोप नहीं होता, अपितु

ज्यों का त्यों 'न' बना रहता है; जैसे—न अस्ति = नास्ति। एकधा = नैकधा। प्रजागरः = प्रकृष्टः जागरः विशेष जागरण। सामान्यतः सोते हुए पुरुष को जब जगाया जाता है तो उसे घबराहट, बेचैनी होती है, किन्तु गुरु का उपदेश बेचैनी उत्पन्न किये बिना जगाने वाला है।

विशेषेणराज्ञाम्—विशेष रूप से राजाओं के लिए यह उपदेश लाभकारी है। अथवा राजाओं को विशेष रूप से यह उपदेश दिया जाना चाहिये। हि = क्योंकि। तेषाम् उपदेष्टारः (उप + √दिश् = तृच) विरला राजाओं को उपदेश देने वाले विरले (बहुत कम) ही होते हैं। वस्तुतः राजाओं के लिए उपदेश देने में वही व्यक्ति समर्थ हो सकता है जो निर्भीकता, प्रभावशालिता तथा दृढ़ संकल्प आदि गुणों से सम्पन्न हो और ऐसे व्यक्ति बहुत कम मिलते हैं।

---

(८) प्रतिशब्दक इव राजवचनमनुगच्छति जनो भयात्। उद्दाम-दर्पश्वयथुस्थगित श्रवणपुटविवराश्चोपदिश्यमानमपि ते न शृण्वन्ति। शृण्वन्तोऽपि च गजनिमीलितेनावधीरयन्तः खेदयन्ति हितोपदेशवादिनो गुरुन्। अहंकारदाहज्वरमूर्च्छान्धकारिता विह्वला हि राजप्रकृतिः। अलीकाभिमानोन्मादकारीणि धनानि। राजविषविकारतन्द्राप्रदा राजलक्ष्मीः।

हिन्दी अनुवाद—प्रतिध्वनि की भाँति लोग भय से राजाज्ञा का अनुसरण ही किया करते हैं और उत्कट गर्वरूपी सूजन के रुँधे हुए कर्णछिद्र वाले वे राजा लोग उपदेश रूप में सुनाये जा रहे विषय को भी नहीं सुनते और सुनते हुए भी हाथी के समान आँख मूँदकर अवहेलना करते हुए हितकारी उपदेश देने वाले गुरुओं को दुःख पहुँचाया करते हैं। राजा का स्वभाव अहंकाररूपी सरसाम से उत्पन्न अचेतना के कारण खोया-खोया-सा चञ्चल रहता है, धन झूठा-अभिमान तथा उन्माद पैदा करने वाले हैं। राजलक्ष्मी राज्यरूपी विष के विकार से आलस्य देने वाली है।

व्याख्या—प्रतिशब्दक:=प्रतिगतः शब्द: प्रतिशब्द: स: एव प्रतिशब्दक: (स्वार्थ में कन् प्रत्यय) प्रतिध्वनि। **जन:**=लोग संस्कृत में जन शब्द नित्य पुंलिङ्ग रहता है और एकवचन में प्रयुक्त होकर भी जन समूह का द्योतन करता है। जैसे स्त्रीजनः=स्त्रियाँ या स्त्रियों का समूह। **भयात्**=गुण से। गुणवाचक शब्द जब हेतु रूप में प्रयुक्त होते हैं तो उनमें इच्छानुसार तृतीया या पञ्चमी विभक्ति की जा सकती है (विभाषागुणेऽस्त्रियाम्)। अन्यथा सामान्यतः हेतु में तृतीया होती है। **राजवचनम्**=राज्ञः वचनम्। राजा की आज्ञा को। **अनुगच्छति**=अनुगमन करते हैं। षष्ठ्यन्तपदे के बाद आने वाला क्रिया शब्द जब सहायक क्रिया 'करना' के साथ न बोला जाकर धात्वर्थ ही बन जाता है तो पहला पद फलाश्रयकर्म के रूप में द्वितीया विभक्ति में आता है; जैसे—राजा का अनुगमन करता है। इस वाक्य में 'राजा' के बाद 'अनुगमन' क्रिया शब्द के अलग होने पर संस्कृत होगी 'राज्ञ. अनुगमन करोति।' यदि अनुगमन अर्थ को बताने वाली अनु उपसर्ग सहित गम् धातु का प्रयोग किया जाये तो संस्कृत—राजानम् अनुगच्छति।

उद्दामदर्पश्वयथुस्थगितश्रवणविवराः—दाम उत्क्रान्तः उद्दामः (उत्कट) उद्दामश्चासौ दर्पः, सः एव श्वयथुः तेन स्थगिते श्रवणयो विवरे येषां ते। उत्कट अभिमान रूपी सूजन से जिनके कानों के छिद्र रुक गये हैं। **ते**=वे राजा लोग **उपदिश्यमानम्** (उप+√दिश्+कर्मवाच्य+यक्+शानच्) कही जाती हुई बात को। **अपि**=भी। **न शृण्वन्ति**=नहीं सुनते।

शृण्वन्तः=(√श्रु+शतृ) अपि—सुनते हुए पहले तो उपदेश सुनते नहीं। दूसरे, यदि सुनते भी हैं तो सुनते हुए भी अनसुना कर देते हैं। **गजनिमीलितेन**=गजवत् निमीलतम्, तेन गजनिमीलितेन (नि+√मील+क्त) मस्त हाथी की भाँति आँख मूँदकर। **अवधीरयन्तः**=(अव+धीर+शतृ) अनसुनी करते हुये, अवहेलना करते हुए। **हितोपदेशवादिनः**=हितः (हितकारी) उपदेशः हितोपदेशः, तं वदन्तीति:, हितोपदेशवादिन:, तान्। हितकारी बात कहने वालों को। **खेदयन्ति**=(√खिद्+णिच्+लट्) कष्ट पहुँचाते हैं।

अहङ्कारदाहज्वरमूर्च्छान्धकारिता—अहङ्कारः एव दाहज्वरः तेन मूर्च्छा तया अन्धकारिता रूपी तीव्रज्वर (सरसाम) से उत्पन्न अचेतनता के कारण खोयी-सी। राजप्रकृतिः=राज्ञां प्रकृतिः। राजाओं का स्वभाव। विह्वला=चञ्चल; बेचैन।

धनानि—धन दौलतें। विभिन्न प्रकार की सम्पत्तियों का संकेत देने के लिए यहाँ बहुवचन का प्रयोग किया गया। अलीकाभिमानोन्मादकारीणि—अभिमानश्च उन्मादश्च अभिमानोन्मादौ, अलीकौ अभिमानोन्मादौ कुर्वन्तीति अलीकाभिमानोन्मादकारीणि—झूठा अभिमान तथा पागलपन उत्पन्न करने वाले।

राजलक्ष्मीः—राज्ञः लक्ष्मीः राज्यश्री। राज्यविषविकारतन्द्राप्रदा=राज्यमेव विषम् तेन विकारः तेन तन्द्रा राज्यविषविकारतन्द्रा तां प्रकर्षेण ददातीति। राज्यरूपी विष से उत्पन्न विकार से उत्पन्न आलस्य को विशेष रूप से प्रदान करने वाली।



(६) आलोकयतु तावत् कल्याणाभिनिवेशी लक्ष्मीमेव प्रथमम्। इयं हि सुभट्खड्गमण्डलोत्पलवनविभ्रमभ्रमरी लक्ष्मीःक्षीरसागरात् पारिजातपल्लवेभ्यो रागम्, इन्दुशकलादेकान्तवक्रताम्, उच्चःश्रवसश्चञ्चलताम्, कालकूटान्मोहनशक्तिम् मदिराया मदम्, कौस्तुभमणेर्नैष्ठुर्यम्, इत्येतानि सहवास परिचयवशाद् विरहविनोदचिह्नानि गृहीत्वोद्गता। न ह्येवविधमपरिचितमिह जगति किञ्चिदस्ति यथेयमनार्या।



हिन्दी अनुवाद—मङ्गल में अनुराग रखने वाले आप पहले लक्ष्मी को ही देख लें। कुशल सैनिकों के कृपाण रूपी समूह, कमलवन में विचरण करने वाली भ्रमरी स्वरूपा यह लक्ष्मी मानो साथ रहने से परिचय हो जाने के कारण

(सहवासियों का) वियोग दुःख दूर करने के लिए चिह्नरूप में पारिजातवृक्ष के पल्लवों से राग (लालिमा, अनुराग), चन्द्रमा की कोर से सर्वथा टेढ़ापन (वंकिमा, कुटिलता), उच्चैःश्रवा घोड़े से चञ्चलता (चपलता, अस्थिरता) कालकूट विष से मोहनशक्ति (मूर्च्छित करना, वश में करना), मदिरा से मद (नशा, अभिमान) तथा कौस्तुभमणि से कठोरता (कठिनता, निर्दयता) ये सब साथ लेकर क्षीर सागर से निकली। इस संसार में ऐसा परिचय को ठुकरा देने वाला कोई नहीं है; जैसे यह नीच लक्ष्मी।



व्याख्या--**कल्याणाभिनिवेशः**=कल्याणे अभिनिवेशः (अभि+नि+√विश्+घञ्) यस्य सः। जिसका मङ्गल की ओर विशेष आग्रह है ऐसे आप। **प्रथमम्**· पहले। यह क्रिया विशेषण है और क्रिया विशेषण में नपुंसकलिङ्ग· एकवचन तथा द्वितीया विभक्ति रहा करती है; अतः यहाँ भी द्वितीया के एकवचन का प्रयोग हुआ है। **लक्ष्मीम् एव आलोकयतु**=लक्ष्मी को ही देख लें, इसके गुण-दोष की परीक्षा कर लें। **तावत्**=और कुछ करने के पूर्व। यह अवश्य है। इसका प्रयोग कई अर्थों में होता है। **सामान्यतः**='तब तक' अर्थ में इसका प्रयोग प्रचलित है। 'तब तक' का तात्पर्य भी 'जब तक कुछ और करने का अवसर मिले उसके 'पूर्व' ही है। यहाँ तावत् के प्रयोग के साथ '**प्रथमम् एव**' का भी प्रयोग हुआ है, जो केवल वक्तव्य विषय पर बल देने के लिए है। **इयं हि**=वास्तव में यह लक्ष्मी। 'हि' अव्यय वाक्य के प्रारम्भ में प्रयुक्त नहीं होता। **हि**=वास्तव में। **सुभटखड्गमण्डलोत्पलवनविभ्रमभ्रमरी**=खड्गानां मण्डलं खड्गमण्डलम् उत्पलानां वनम् उत्पल वनम् सुभटानां खड्गमण्डलम् एवम् उत्पलवनं सुभटखड्गमण्डलोत्पलवनं तस्मिन् विभ्रमे भ्रमरी। कुशल सैनिकों के कृपाण समूह रूपी कमलवन में विचरण करने में भ्रमरी रूपा। **पारिजातपल्लवेभ्यः**=पारिजातस्य पल्लवेभ्यः। **पारिजाता**=वृक्ष के पत्तों से। **रागम्**=पल्लव पक्ष में लाली को लक्ष्मी पक्ष से अनुराग को। यहाँ राग आदि पदों में श्लेष के द्वारा दो अर्थों की अभिव्यक्ति की गयी है। एक अर्थ का सम्बन्ध समुद्र से निकली वस्तुओं से है और दूसरा अर्थ लक्ष्मी के परिणामस्वरूप होने वाले दुर्गुणों से सम्बन्धित है।

इन्दुशकलात् = इन्दोः शकलात् । चन्द्रमा की ओर से । **एकान्तवक्रताम्** = एकान्तेन वक्रताम् । सर्वथा टेढ़ेपन को । **वक्रता** टेढ़ापन (चन्द्रपक्ष में बाँकपन, लक्ष्मी पक्ष में कुटिलता) । **उच्चःश्रवसः** = उच्चैः श्रवसी यस्य तस्मात् लम्बे कानों वाले सार्थक नामधारी उच्चैः श्रवा घोड़े से । **चञ्चलताम्** = अश्वपक्ष में चपलता को, लक्ष्मी पक्ष में अचिरस्थायित्व को । **कालकूटात्** = कालस्य कूटात्–कालकूट = नामक विष से । **मोहनशक्तिम्** = मोहनस्य शक्तिम् । विष पक्ष मे मूर्च्छित करने का सामर्थ्य, लक्ष्मी पक्ष में—वंश में करने की शक्ति को । **मदिरायामदम्** = मदिरा से मद को, सुरा पक्ष में नशा, लक्ष्मी पक्ष में घमण्ड को । **कौस्तुभमणे** = कौस्तुभश्चासौ मणिः तस्मात् । कौस्तुभ नामक मणि से । **नैष्ठुर्यम्** = (निष्ठुर + ष्यञ)= मणिपक्ष में कठोरता, लक्ष्मी पक्ष में निर्दयता । **सहवासपरिचयवशात्** = सहवासेन परिचयस्य वशात् । साथ रहने से परिचय हो जाने के कारण । **एतानि** = इन सबको । **विरहविनोदचिह्नानि** = विरहस्य विनोदय चिह्नानि । विरह को दूर करने के लिए (सहवासियों के प्रतीकरूप) चिह्नों को अथवा–विरह विनोदाय चिह्नानि । विरहकाल में मन बहलाव के लिए साथियों के चिह्नों को । **विनोद** = दूर करना मनबहलाव । **गृहीत्वा** = (ग्रह् + क्त्वा लेकर । **क्षीरसागरात्** = क्षीरस्य सागरात् = क्षीरसमुद्र से । **उद्गता** = (उद् + $\sqrt{}$गम् + क्त + टाप्) निकली । पौराणिक परम्परा के अनुसार अमृत के लिए समुद्रमन्थन किये जाने पर जो चौदह रत्न (अमृत सहित) समुद्र से निकले थे वे ये हैं—लक्ष्मी, कौस्तुभ, पारिजातक सुराधन्वन्तरिश्चन्द्रमा, गावौ कामदुधा, सुरेश्वरगजो रम्भादिदेवाङ्गनाः । अश्वः सप्तमुखो विष हरिधनुः शङ्खोऽमृत चाम्बुधे रत्नानीह चतुर्दश प्रतिदिनं कुर्यः सदा मङ्गलम् ।। गुणवैशिष्ट्य के आधार पर पुराणों में सात समुद्र माने गये हैं । उनके नाम ये हैं–(१) इक्षु समुद्र (२) सुरा समुद्र (३) सर्पिः समुद्र (४) दधिः समुद्र (५) क्षीर समुद्र (६) स्वादुजल समुद्र (७) लवण समुद्र । कहा भी है—

लक्षणेक्षुसुरासर्पिर्दधि क्षीरजलाः समाः ।।

इह (इदम् = ह) **जगति** इस संसार में । **एवंविधम्** = एवं विधा यस्य तत् । इस प्रकार का ऐसा । **अपरिचितम्** = अविद्यमान परिचितम् (परि + $\sqrt{}$जि + क्त भावे) यस्य तत् । परिचय न रखने वाला । **किञ्चित्** = कोई भी । **न हि अस्ति**

—नहीं । यथा—जैसी । सामान्यत:=='यथा' शब्द का प्रयोग क्रिया विशेषण रूप में होता है; किन्तु इतरेतर सम्बन्ध बनाने के लिए विशेषण जैसा प्रयोग भी यत्र-तत्र मिलता है; जैसे—यथा वृक्षस्तथा फलम् । जैसा वृक्ष वैसा फल । इसी प्रकार यहाँ एवंविधम् विशेषण का सम्बन्धी 'यथा' यादृश अर्थ का ही बोध करायेगा । 'येन प्रकारेण' का नहीं । इयम् अनार्या=(न आर्या) यह नीच लक्ष्मी । अमरकोश में आर्य शब्द में समानार्थक—'महाकुलकुलीनार्यसभ्यसज्जनसाधव:' शब्दों में कुल परम्परा या कुलोचित आधार के पालक को आर्यपद से अभिहित किया है । यह लक्ष्मो आचार का पालन न करने से अनार्या है ।

(२०) लब्धापि खलु दु:खेन परिपाल्यते । दृढगुणसन्दाननिष्पन्दीकृतापि नश्यति । उद्दामदर्पभटसहस्रोल्लासितासिलतापञ्जरविधृताप्यपक्रामति । मदजलदुर्दिनान्धकारगजघटितघनघटापालिता । प्रपलायते । न परिचय रक्षति । नाभिजनमीक्षते । न रूपमालोकयते । न कुलक्रममनुवर्तते । न शील पश्यति । न वैदग्ध्य गणयति । न श्रुतमाकर्णयति । न धर्ममनुरुध्यते । न त्यागमाद्रियते न विशेषज्ञतां विचारयति । नाचारं पालयति । न सत्यमनुबुध्यते । न लक्षणं प्रमाणीकरोती ।

हिन्दी अनुवाद--- मिल जाने पर भी यह वास्तव में कठिनता से रखी जाती है । गुणों के दृढ़ पाशों से निश्चय की गयी भी छिप जाती है । उत्कट गर्व वाले सहस्रों सैनिकों से चमकायी गयी तलवारों के पिंजड़े मे पकड़कर रखी गयी भी निकल भागती है । मदजल की वर्षा से अन्धकार करने वाले हाथियों की मेघमाला से सरक्षित रहने पर भी भाग जाती है, न परिचय की रक्षा करती है; न कुल को देखती है, न रूप को निहारती है, न कुलपरम्परा का अनुसरण करती है, न शील को देखती है, न पाण्डित्य को गिनती है, न शास्त्र की बात सुनती है, न धर्म की ओर झुकती है, न त्याग का आदर करती है, न विशेष

जानकारी का विचार करती है, न आचार का पालन करती है, न सत्य को समझती है, न लक्षण को प्रमाण मानती है।

व्याख्या—लब्धा =(√लभ् + क्त + टाप्) अपि = प्राप्त हुई भी। खलु = वास्तव में। दुःखेन = कठिनता। परिपाल्यते = रखी जाती है। पहले तो लक्ष्मी मिल नहीं पाती। जैसे-तैसे मिल भी जाये, तो इसका रखना कठिन है।

दृढगुणसन्दाननिष्पन्दीकृता = गुणानां सन्दानम् (सम् + √दो + ल्युट्) गुण सन्दानम्, दृढं च तद् गुणसन्दानं तेन निष्पन्दीकृता (अनिष्पन्दा निष्पन्दाकृता इति निष्पन्दीकृता) गुणों के मजबूत बन्धन से निश्चल की गयी। यहाँ गुण शब्द में श्लेष का प्रयोग है जिससे दो अर्थ निकलते है (१) सन्धि विग्रह आदि राजगुण (२) मजबूत फांसे के लिए रस्सी। नश्यति = छिप जाती है। लोक में अन्य प्राणी पाशबद्ध होने पर कहीं नहीं जाते, किन्तु लक्ष्मी अनेक उपाय करने पर भी छिप जाती है।

उद्दामदर्पभटसहस्रोल्लासितासिलतापञ्जरविधृता = उद्दामः दर्पः येषां ते उद्दामदर्पाः उद्दामदर्पाश्च ते भटः, तेषां सहस्र तेन उल्लासिता (उद् + √लस् + णिच् + क्त + टाप्) असिलता (असिः लता इव) सा एव पञ्जरं तस्मिन् विधृता (विशेषण धृता) उत्कट गर्व वाले सहस्रों सैनिकों से चमकायी गयी तलवार रूपी पिंजड़े में पकड़कर बन्द की गयी। अपक्रामति = निकल भागती है। सैनिकों द्वारा युद्ध करके प्राप्त की गयी भी लक्ष्मी दूसरे राजा के पास पहुँच जाती है। विधृता - विशेष रूप से पकड़कर रखी गयी।

मदजलदुर्दिनान्धकारगजघनघटापरिपालिता = मदेन जलं मदजलम् दुर्दिनेन अन्धकारः दुर्दिनान्धकारः, मदजलमेव दुर्दिनान्धकारः, तत्सम्बन्धितः गजा एव घनाः तेषां घटया।

परिपालिता = मेघाच्छादिता दुर्दिन से उत्पन्न अन्धकार की भांति काली मदधारा बहाने वाले घनाकार हाथियों के समूह से सुरक्षित होती हैं। प्रपलायते =(प्र + परा + √अय् = लट्) भाग जाती है। जिनके द्वार पर हाथी झूमते हैं उन्हें छोड़कर लक्ष्मी दूसरों के पास चली जाती है।

न परिचयं रक्षति==न परिचय की रक्षा करती है। अर्थात् चिरकाल तक रहने से हुए परिचय को ठुकरा कर यह लक्ष्मी दूसरों के यहाँ चली जाती है। **न अभिजनम् ईक्षते**=न कुल को देखती है। अर्थात् यह उच्च वंश है मुझे यहाँ रहना चाहिये, ऐसा विचार नहीं करती। **न रूपम् आलोकयते**=रूप सौन्दर्य का ध्यान नहीं रखती। सुन्दर से सुन्दर को छोड़कर अत्यन्त कुरूप के यहाँ चली जाती है। **न कुलक्रमम्**=(कुलस्य क्रमम्) **अनुवर्तते**=कुल-परम्परा का अनुसरण नहीं करती। कई पीढ़ियों से कुल आश्रय लेने पर भी सहसा छोड़कर चल देती है। **न शीलम् पश्यति**=शील नहीं देखती। अच्छे आचारवान् को छोड़कर दुराचारी के यहाँ चली जाती है। महाभारत में शील का लक्षण इस प्रकार दिया है—अद्रोह: सर्वभूतेषु कर्मणा, मनसा गिरा। अनुग्रहश्च, दानं च शीलमेतत् प्रशस्यते ।। न वैदग्ध्यम् विदग्ध+ष्यञ्। **गणयति**=पाण्डित्य या योग्यता को गिनती में नहीं लाती। योग्यतम व्यक्ति को छोड़कर मूर्खतम के यहाँ चली जाती है। **न श्रुतम् आकर्णयति**=शास्त्रज्ञान की बात नहीं सुनती। इसने शास्त्रों का बहुत अध्ययन किया है, यह तेरे रहने के लिए समुचित आश्रय है, इस बात पर ध्यान न देकर निरक्षर का सहारा ले लेती है। **न धर्मम् अनुरुध्यते**=(अनु+√रुध्+लट् दिवादि) धर्म की इच्छा नहीं रखती। धार्मिक को छोड़कर अधार्मिक के यहाँ पहुँच जाती है। **न त्यागम् आद्रियते**=(आ+√दृ+लट् तुदादि) त्याग का सम्मान नहीं करती। (दान के द्वारा धन का सदुपयोग करने वाले को छोड़कर कृपण के चरणों में जा लौटता है) **न विशेषज्ञताम्**=(विशेषण जानीतीति) विशेषज्ञ: तस्य भाव: विशेषज्ञता ताम् **विचारयति**=विशेष जानकारी का विचार नहीं करती। जो हर विषय के विशेषज्ञ हैं उनके यहाँ न रहकर अज्ञानी जनों के यहाँ रहती है। **न आचारम् पालयति**=आचार का पालन नहीं करती। कुलटा की भाँति घर-घर घूमती फिरती है। एक पति के साथ रहना ही स्त्री का आचार है, इस नियम को नहीं मानती। **न सत्यम् अवबुध्यते**=सत्य को नहीं समझती। सत्यवादी को ठुकरा कर झूठे के यहाँ चली जाती है अथवा 'मैं तुम्हारे यहाँ रहूँगी' इस कथन की सत्यता पर ध्यान न देकर इच्छानुसार चली जाती है। **न लक्षण प्रमाणीकरोति** (अप्रमाणं प्रमाणं करोतीति प्रमाणीकरोति) लक्षण को प्रमाण नहीं मानती।

शास्त्रों के अनुसार लक्षण सम्पन्न पुरुष के पास मुझे रहना चाहिये, अन्यथा शास्त्र अप्रमाणिक समझे जायेंगे, इस बात का भी ध्यान नहीं रखती। शास्त्रों में राज्यप्राप्ति, चक्रवर्तित्व आदि के लक्षण लिखे हैं; जैसे—यस्य पाणितलौ रक्तौ तस्य राज्य विनिर्दिशत् तथा अकुश कुण्डल चक्र यस्य पाणितले भवेत्। चक्रवर्ती भवेन्नित्यं सामुद्रिकवचो यथा।



(११) गन्धवनगरलेखेव पश्यत एव नश्यति। अद्याप्यारूढ मन्दर-परिवर्तावर्तभ्रान्ति जनितसंस्कारेव परिभ्रमति। कमलिनो संचरण व्यतिकरलग्नलिननालकण्टकक्षकेव न क्वचिदपि निर्भरमाबध्नाति पदम्। अति प्रयत्नविधृतापि परमेश्वरगृहेषु विविधगन्धगजगण्डमधु-पानमत्तेव परिस्खलति। पारुष्यमिवोपशिक्षितुमसिधारासु निवसति। विश्वरूपत्वमिव ग्रहीतुमाश्रिता, नारायणमूर्तिम्। अप्रत्ययबहुला च दिवसान्तकमलमिव समुचितमूलदण्डकाशमण्डलमपि मुञ्चति भूभुजम्।



हिन्दी अनुवाद—यह लक्ष्मी गन्धर्व नगर की रेखा के समान देखते-देखते ही ओझल हो जाती है। (समुद्र मन्थन के समय) मन्दराचल के घूमने से बने भँवरों में चक्कर लगाने से उत्पन्न संस्कार वाली यह मानो अब भी घूमती रहती है। कमलिनी में विचरण के सम्पर्क से लगे कमलनाल के कांटों से क्षित होकर मानो यह कहीं भी जमकर पैर नहीं रखती। रईसों के घरों में बड़े प्रयत्न से स्थिर की गयी भी यह मानो, अनेक मदोन्मत्त हाथियों की कनपटी से बहने वाले मद का पान करने से मतवाली होकर फिसल जाती है। निष्ठुरता सीखने के लिए मानो तलवार की धार में निवास करती है। विश्वरूपता ग्रहण करने के लिए मानो यह विष्णु के शरीर का आश्रय लिये हुए है। अत्यधिक अविश्वसनीय यह सायकालीन कमल की भाँति जिसकी जडनाल, मध्यभाग तथा बाह्य विस्तार पूरी तरह से वृद्धि को प्राप्त है, उस भूपति को भी छोड़

देती है जिसका मूल (आधार, देश आदि), दण्ड (सेना, कर) खजाना तथा मण्डल (राज्यक्षेत्र, सामन्त समूह) पूरी तरह से बढ़ हुए हैं।



व्याख्या—गन्धर्वनगरलेखा=गन्धर्वाणां नगरस्य लेखा। गन्धर्व नगर की रेखा। दृष्टिदोष के कारण आकाश में दिखायी देने वाली मिथ्या आभासरूप नगराकार रेखा जिसे गन्धर्वनगर या हरिश्चन्द्रपुरी के नाम से पुकारते हैं। **पश्यतः** (√दृश् + शतृ) देखते-देखते। यहाँ अनादर अर्थ व्यक्त करने के लिए षष्ठी विभक्ति का प्रयोग हुआ है (षष्ठी चानादरे)। जब किसी क्रिया के होते-होते पूर्ण क्रिया का सम्पादन बताया जाता है तब क्रिया का बोध कराने वाले शब्द में षष्ठी विभक्ति होती है; जैसे—उसे तप करते-करते कई वर्ष बीत गये। तस्य तपस्तप्यमानस्य कतिपय संवत्सरा व्यतीताः। **नश्यति**=छिप जाती है। लक्ष्मी के सहसा निवास का संकेत करने के लिए गन्धर्वनगर लेखा को उपमान रखा गया है।

आरूढमन्दरपरिवर्तावर्तभ्रान्तिजनितसंस्कारः=मन्दरस्य परिवर्तः तेन आवर्तः तस्मिन् भ्रान्तिः तया जनितः संस्कारः, आरूढः (आ + √रुह् + क्त) मन्दरपरिवर्तावर्तभ्रान्तिजनितसंस्कारः याम् सा। मन्दराचल के घूमने से भँवर में चक्कर काटने से उत्पन्न संस्कार जिसे बना हुआ है। **इव**=मानो। यहाँ इव पद उत्प्रेक्षा का व्यञ्जक है। **अद्य अपि**=आज भी। **परिभ्रमति**=चक्कर काट रही है। 'घर-घर चक्कर काटना' क्रिया के कारण रूप में पूर्व संस्कारों की कल्पना यहाँ बड़ी मनोरम है।

कमलिनीसंचरणव्यतिकरलग्ननलिननालकण्टकक्षता=कमलिनीषु संचरणस्य व्यतिकरेण लग्नानि कमलिनीसंचरणव्यतिकरलग्नानि तानि च नलिनालकण्टकानि (नलिनानां नालानि नलिननालानि तेषां कण्टकानि) तैः क्षता (क्षण् + क्त + टाप्)। कमलिनियों में घूमने के सम्पर्क से लगे हुए कमलनाल के काँटों से घायल। **क्वचिद् अपि**=कहीं भी। **निर्भरम्**=पूर्ण रूप से। यह क्रिया विशेषण है, इसलिए द्वितीया विभक्ति का एकवचन प्रयुक्त हुआ है। संस्कृत शब्द का अर्थ निःशेषेण भरः यथा स्यात् तथा इस व्युत्पत्ति के आधार पर 'पूरा भार लिये हुए अर्थात् पूरी तरह से है, जब कि आजकल हिन्दी में निर्भर का अर्थ आश्रित है

(निर्गतः भरात्) । पदं न आबध्नाति=पैर नहीं जमाती । इव=मानो । यहाँ पद शब्द में श्लेष है जिससे नारी रूप में पद का अर्थ चरण है तथा सम्पत्तिरूप में पद का अर्थ है—प्रतिष्ठा । लक्ष्मी का कमल में निवास है इसी से उसे कमला कहा जाता है ।

परमेश्वरगृहेषु=परमाश्च ते ईश्वराः परमेश्वराः तेषां गृहेषु । रईसों के घरों में । परमेश्वर शब्द का यहाँ पारिभाषिक प्रयोग किया गया है । प्राचीनकाल में जिन्हें श्रेष्ठी या इभ्य कहा जाता था उन्हें ही यहाँ परमेश्वर शब्द से अभिहित किया गया है । राजा के अतिरिक्त केवल उन्हीं को हाथी रखने का अधिकार था । प्रजा में जो चाहे हाथी बाँध ले, ऐसी बात नहीं थी । **अतिप्रयत्नविधृता**—अतिप्रयत्नेन विधृता । बहुत यत्न से स्थिर की गयी । अपि—भी । **विविधगन्धगजगण्डमधुपानमत्ता**=विभिन्नाः विधाः येषां ते विविधाः गन्धयुक्ताः गजाः गन्धगजाः (मध्यम पदलोपी समास) विविधानां गन्धगजानां गण्डयोः मधुरः पानेन मत्ता (√मद्+क्त+टाप्) । अनेक मद वाले हाथियों की कनपटियों के मद का पान करने से मतवाली । इव=मानो । **परिस्खलित**=खिसक जाती है । रईसों के घरों में हाथियों के पहरे में बहुत प्रयत्न करके रखी गयी लक्ष्मी निकल भागती है । स्थिर न रहने में गजों के मदपान की हेतुत्प्रेक्षा की गयी है ।

पारुष्यम् (पुरुष+ष्यञ्) उपशिक्षितुम् (उप+शिक्ष्+तुमुन्) इव—मानो कठोरता सीखने के लिए । **असिधारासु**=असीनां धारासु=तलवारों की धार में । **निवसति**=रहती है । राजलक्ष्मी की प्राप्ति युद्धों द्वारा होने से उसे तलवारों की धार में निवास करने वाली कहा है । निवास के लिए पारुष्य शिक्षण फल की यहाँ उत्प्रेक्षा की गयी है । कृपाण की कृपाहीन धार पर रहने वाली लक्ष्मी निर्दयता अवश्य सीख जायेगी ।

विश्वरूपत्वम्=विश्वानि रूपाणि यस्य सः विश्वरूपः तस्य भावः विश्वरूपत्वम् तत् । अनेकरूपता को अथवा, विश्वरूपे यस्य सः विश्वरूपः— सारा विश्व जिसके शरीर में विद्यमान् है । कहा भी है—युगान्त काल प्रतिसंहृतात्मनो जगन्ति यस्यां सा विकासमासत । **ग्रहीतुम्**=(ग्रह्+तुमुन्) ग्रहण करने के लिए । **नारायणमूर्तिम्**=नारायणस्य मूर्तिम् । विष्णु के शरीर को । **आश्रिता**=(आ+√श्रि+क्त+टाप् । आश्रय रूप में लिये हुए हैं । गुप्तकाल में नारायण

विष्णु की तीन प्रकार की मूर्तियाँ मिलती हैं—(१) गरुडस्थ मूर्ति, (२) शेषशायी मूर्ति (३) विश्वरूप मूर्ति। यहाँ विश्वरूप मूर्ति के उस स्वरूप का वर्णन किया गया है, जिसमें विष्णु के साथ लक्ष्मी भी बनायी गयी हो।

अप्रत्ययबहुला=न प्रत्यय: (प्रति=इण् + अच्) अप्रत्यय:, अप्रत्यय: बहुला यस्याम् सा। जिसका बिल्कुल विश्वास नहीं। अत्यधिक अविश्वसनीय। **दिवसान्तकमलम्**=दिवसस्य अन्त: दिवसान्त तत्कालिक कमलम्। सायंकालीन कमल को। **इव**=समान। यह उपमा का वाचक शब्द है। यहाँ समुपचित० विशेषण कमल तथा राजा दोनों के लिए प्रयुक्त है। कमलपक्ष में—**समुपचितमूलदण्डकोशमण्डलम्**=समुपचितानि (सम् + उप + √चि + क्त) मूल दण्ड कोश: मण्डलं च यस्य तत्। जिसके जड़, नाल, मध्यभाग तथा बाहरी विस्तार सब वृद्धि को प्राप्त हो चुके हैं ऐसे कमल को। राजा के पक्ष में—समुपचितानि मूलं दण्ड: कोश: मण्डलं च यस्य तम्। जिसका राज्यक्षेत्र, सेना, खजाना तथा मित्रमण्डल सब पूरी तरह से वृद्धि को प्राप्त हो चुके हैं, **भूभुजम्**=भूवं भुनक्तीति भूभुक् तम् भूपति को। **मुञ्चति**=छोड़ देती है। यह काव्य प्रसिद्धि है कि सायंकाल होने पर कमल की पखुड़ियाँ मुंद जाती हैं और खिलते कमल की विकास लक्ष्मी का मुद्रित कमल को छोड़कर चल देना स्वाभाविक ही है। इधर राज्यलक्ष्मी भी बड़े से बड़े राजा को छोड़कर चल देती है।

---

(१६) लतेव विटपकानध्यारोहति। गङ्गेव वसुजनन्यपि तरङ्गबुद्बुदचञ्चला। दिवसकरगतिरिव प्रकटितविविधसंक्रान्ति:। पातालगुहेव तमोबहुला। हिडिम्बेव भीमसाहसैकहार्यहृदया। प्रावृडिवाचिरद्युतिकारिणी। दुष्टपिशाचीव दर्शितानेकपुरुषोच्छ्राया स्वल्पसत्त्वमुन्मत्तीकरोति।

हिन्दी अनुवाद—लता जैसे वृक्षशाखाओं पर चढ़ जाती है वैसे ही यह लक्ष्मी गुण्डों के सरदारों का सहारा लेती है। गङ्गा जैसे वसु नामक देवताओं

की जननी होती हुई भी तरङ्गों और बुलबुलों से चञ्चल है वैसे ही यह लक्ष्मी धन की जननी होती हुई भी तरङ्ग एवं बुलबुलों के समान चञ्चल है। सूर्य की गति जैसे मेष वृष आदि अनेक संक्रान्तियों को व्यक्त करने वाली है वैसे ही यह लक्ष्मी अनेक व्यक्तियों के पास घूमने वाली है। पातालगुफा जैसे अधिक अन्धकार वाली है वैसे ही यह लक्ष्मी अधिक तमोगुण वाली है। हिडिम्बा राक्षसी जैसे केवल भीमसेन के साहस से हरने योग्य हृदय वाली थी वैसे ही यह लक्ष्मी केवल प्रचण्ड साहस से वश में करने योग्य हृदय वाली है। बिजली को चमकाने वाली वर्षा के समान यह थोड़े समय तक प्रकाश करने वाली है। पिशाचिनी जैसे (एक के ऊपर दूसरे को खड़ा करने पर) अनेक पुरुषों के बराबर ऊँचाई प्रदर्शित करके थोड़े साहस वाले व्यक्ति को पागल बना देती है। वैसे ही यह लक्ष्मी अनेक पुरुषों को उन्नति दिखाकर निर्बल हृदय वाले व्यक्ति को (उन्नति पाने की आशा में) पागल बना देती है।

व्याख्या—'लतेव' से लेकर 'दुष्ट पिशाचीव' तक पूर्ण वाक्यों में उपमा का प्रयोग है। उपमेय उपमान के लिए समान विशेषणरूप साधारण धर्म के निर्देश में श्लेष का सुन्दर निर्वाह यहाँ हुआ है, किन्तु उपमा के लिए जो भावसाम्य होना चाहिये उसका यहाँ अभाव है। श्लेषचमत्कार ही, कवि को ईष्ट प्रतीत होता है। **लता इव**=लता के समान। **बिटपकान्**=विटान् पान्तीति विटपा:, एव विटपका: (स्वार्थेकन्) लता पक्ष में टहनियों को, लक्ष्मीपक्ष में धूर्तों के रक्षक, सरदारों को। विपक्षी, धूर्त। **अध्यारोहित** = (अधि + आ + रुह् + लट्) आश्रय लेती है। **गङ्गा इव**=गङ्गा के समान। **वसुजननी**=वसूनां जननी। गङ्गा पक्ष में—वसु नामक आठ देवताओं की माता। **लक्ष्मीपक्ष में**=धन सम्पत्ति की जननी। महाभारत की कथा के अनुसार महर्षि वशिष्ठ के शाप से गङ्गा ने एक अन्य ऋषि के शाप से मनुष्य-योनि प्राप्त करने वाले आठ वसुओं को शान्तनु की पत्नी बनकर जन्म दिया था। महात्मा भीष्म उन्हीं वसुओं में से अन्तिम वसु के अवतार थे। **तरङ्गबुद्बुदचञ्चला**=तरङ्गै बुद्बुदैश्च चञ्चला। तरङ्गों और बुलबुलों के कारण चञ्चल। लक्ष्मीपक्ष में—तरङ्गाश्च बुद्बुदाश्च तरङ्गबुद्बुदा: यद्वत् चञ्चला। तरङ्गों और बुलबुलों

के समान चपल । इस वाक्य में गङ्गा के वसुजननी होने पर भी तरङ्गबुदबुद-चञ्चला होने में विरोध प्रतीत होता है जिसका परिहार यों है कि गङ्गा नारी में वसुजननी रही है और जलरूप में तरङ्गबुदबुदचञ्चला । लक्ष्मीपक्ष में—धन सम्पत्ति की जननी होती हुई भी लक्ष्मी तरङ्गबुदबुदों की भाँति चञ्चल है, इस अर्थ द्वारा लक्ष्मी स्थायित्व की ओर ही निर्देश किया गया है । डॉ० वासुदेव-शरण अग्रवाल ने इस वाक्य में वसु, तरङ्ग तथा बुदबुद शब्दों को पारिभाषिक मानकर वसु का अर्थ 'रत्न' में पड़ा 'बाल' तथा बुदबुद का अर्थ 'रत्न' में पड़ा छाला बताया है और अनगढ़ रत्न की लक्ष्मी के सम्बन्ध में इस वाक्य की योजना की है । शाण पर चढ़ने से तराश करने वाला इन दोषों को देखता है उसकी निगाह में अनगढ़ रत्न की लक्ष्मी वही तराश होने पर वसु (रत्न) जननी होती हुई भी तरङ्गबुदबुद दोषों के कारण रत्न के टूट जाने की स्थिति में चञ्चल ही रहेगी ।

दिवसकरगति:—दिवसं करोतीति दिवसकरः, तस्य गतिः (गम् + क्तिन्)। सूर्य की गति । **प्रकटितविविधसंक्रान्तिः**—(सूर्यगति पक्ष में) प्रकटिताः (प्र + √कट् + क्त + टाप्) विविधाः संक्रान्तयः यया सा । जिसने (एक राशि से दूसरी राशि पर जाकर) अनेक (बारह) संक्रान्तियाँ प्रकट कर दी हैं । लक्ष्मीपक्ष में—प्रकटिता विविधेषु संक्रान्तिः यया सा । जिसने अनेक व्यक्तियों के पास संचरण करना प्रकट कर दिया । प्राचीन परम्परा के अनुसार पृथ्वी स्थिर तथा सूर्य पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाने वाला माना जाता है; जबकि आजकल पृथ्वी का सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाना दृष्ट है ।

पातालगुहा—पातालस्य गुहा । पाताल की गुफा । **तमोबहला**—(गुहापक्ष में) तमसा बहला । अन्धकार के कारण अँधेरी अथवा गाढ़ अन्धकार वाली (लक्ष्मीपक्ष में) तमः बहुलं यस्यां सा । अधिक तमोगुण वाली । लक्ष्मी प्राप्त करके मनुष्य तमोगुणी कार्यों में प्रवृत्त होते हैं; अतः यह तमोबहुला है ।

हिडिम्बा इव—हिडिम्बा नामक राक्षसी जिसने भीम द्वारा घटोत्कच पुत्र पैदा किया था । **भीमसाहसैकहार्यहृदया**—(हिडिम्बा पक्ष में) भीमस्य साहसेन एक हार्यम् (√हृ + ण्यत्) हृदयं यस्याः सा । भीमसेन के साहस (हिडिम्ब-

वधादि) से केवल जिसका हृदय हरा जा सकता था (लक्ष्मीपक्ष में) भीमं च तत् साहसं भीमसाहसं तेन एव हार्यं हृदयं यस्याः सा। प्रचण्ड साहस से केवल जिसका हृदय हरा जा सकता है।

प्रावृड् इव---वर्षा की भाँति। अचिरद्युतिकारिणी = (वर्षापक्ष में) अचिर द्युति कर्तुं शीलं यस्याः सा। विद्युत् उत्पन्न करने वाली (लक्ष्मीपक्ष में) अचिरा या द्युतिः तां कर्तुं शील यस्याः सा। थोड़ी देर तक शोभा उत्पन्न करने वाली। लक्ष्मी का चमत्कार थोड़े ही दिन रहना है। अचिरद्युति = बिजली थोड़ी देर तक रहने वाली शोभा।

दुष्टपिशाची = दुष्ट (√दुष् + क्त + टाप्) चासौ पिशाची। क्रूर पिशाचिनी भूत-प्रेत-पिशाच् योनि तमोगुणी स्वभाव वाली तथा क्रूर कर्म वाली बतायी गयी है। दर्शितानेकपुरुषोच्छ्राया = दर्शितः (√दृश् + णिच् + क्त) अनेकषां पुरुषाणाम् उच्छ्रायः (उत् + श्रि + घञ्) यया सा। पिशाची पक्ष में—जिसने अनेक पुरुषों के बराबर ऊँचाई दिखा दी है। लक्ष्मीपक्ष में—जिसने अनेक पुरुषों को उन्नति दिखा दी है। भूत-पिशाचों के विषय में यह जनश्रुति है कि वे अपना रूप बहुत लम्बा-चौड़ा दिखाकर लोगों को डराया करते हैं। पुरुष = मनुष्य प्राचीनकाल की एकमाप जो १२० अंगुल की होती थी अथवा मनुष्य जब खड़ा होकर हाथ ऊपर उठा दे तो वह ऊँचाई एक पुरुष की मानी जाती थी। स्वल्पसत्त्वम् = स्वल्प सत्त्वं यस्य स तम्। पिशाची पक्ष में —थोड़े साहस वाले व्यक्ति को। लक्ष्मी-पक्ष में--थोड़ी बुद्धि वाले व्यक्ति को। उन्मत्तीकरोति = अनुन्मत्तम् उन्मत्तं करोतीति उन्मत्तीकरोति—(उत् + √मद् + क्त = उन्मत्त + च्वि + √कृ + लट्) पागल बना देती है। कम साहस वाला व्यक्ति पिशाची को देखकर, वैसी लक्ष्मी पाने के लिए पागल बन जाता है।

---

(१३) सरस्वतीपरिगृहीतमीर्ष्ययेव नालिङ्गति। जनं गुणवन्तमपवित्रमिव न स्पृशति। उदारसत्त्वममङ्गलमिव न बहुमन्यते। सुजनमनिमित्तमिव न पश्यति। अभिजातमहिमिव लङ्घयति। शूरं कण्टक-

मिव परिहरति । दातारं दुःस्वप्नमिव न स्मरति । विनीत पातकिन-मिव नोपसर्पति । मनस्विनमुन्मत्तमिवोपहसति ।

हिन्दी अनुवाद—सरस्वती द्वारा अपनाये गये विद्वानों को मानो ईर्ष्या के कारण गले नहीं लगाती । अपवित्र की भाँति गुणवान् पुरुष को नहीं छूती । अशुभ की भाँति उदार हृदय व्यक्ति का सम्मान नहीं करती । अपशकुन की भाँति सज्जन को नहीं देखती, सर्प की भाँति सत्कुलोत्पन्न को लाँघ जाती है । काँटे की भाँति वीर को त्याग देती है । बुरे स्वप्न की भाँति दानी को याद नहीं करती । पापी की भाँति विनयी के पास नहीं जाती । पागल की भाँति दृढ़ संकल्प व्यक्ति का मजाक उड़ाती है ।

व्याख्या—सरस्वतीपरिगृहीतम् = सरस्वत्या परिगृहीतम् (परि + √ग्रह् + क्त) । सरस्वती द्वारा अपनाये गये व्यक्ति को । **ईर्ष्यया इव** = मानो ईर्ष्या के कारण । यहाँ विद्वान् का आलिङ्गन न करने में ईर्ष्या हेतु की उत्प्रेक्षा की गयी है । सरस्वती और लक्ष्मी का परस्पर सौतिया डाह माना जाता है । जैसे एक नारी से आलिङ्गित पुरुष को दूसरी नारी आलिङ्गन करना नहीं चाहती वैसे ही विद्वान् का आलिङ्गन लक्ष्मी नहीं करती । **न आलिङ्गति** = गले नहीं लगाती, नहीं अपनाती ।

गुणवन्तम् (गुण + मतुप्) **जनम्** = गुणवान् पुरुषों को । **अपवित्रम् इव** = अपावन की भाँति । अथवा मानो अपावन हो इसलिए । **न स्पृशति** = नही छूती । गुणी पुरुष का लक्ष्मी द्वारा सर्वथा परित्याग बताने के लिए यहाँ स्पर्श तक का भी निषेध किया गया है । इस अनुच्छेद में 'जन गुणवन्तम्' से 'उपहसति' तक उपमा अलङ्कार मानकर हिन्दी अनुवाद किया गया है । वैसे उत्प्रेक्षा मानने पर भी अर्थ सङ्गति बैठ जाती है; जैसे--लक्ष्मी भगवान् को नहीं छूती मानो वह अपवित्र हो, इत्यादि ।

उदारसत्त्वम्—उदारं सत्त्वं यस्य सः, तम् । उदार हृदय वाले व्यक्ति को । **अमङ्गलम् इव** = अशुभ की भाँति मानो अशुभ समझकर । **न बहुमन्यते** =

सम्मान नहीं करती। अमङ्गलकारी वस्तुओं से हर व्यक्ति बचता है। लक्ष्मी भी उदार हृदय वाले पुरुष को अमङ्गलकारी समझकर उसे सम्मान नहीं देती।

सुजनम्—शोभनः जनः सजनः तम्। सज्जन को। **अनिमित्तम् इव**=अप्रशस्तं निमित्तम् अनिमित्तम् तद् इव, अपशकुन की भांति। **न पश्यति**=नहीं देखती। हर व्यक्ति अपशकुन द्योतक वस्तु को सामने देखकर उस ओर से तुरन्त दृष्टि हटा लेता है, उसे देखना नहीं चाहता। लक्ष्मी भी सज्जन को देखना नहीं चाहती।

शूरं कण्टकम् इव परिहरति=वीर को कांटा समझकर उससे बच जाती है। हर पथिक मार्ग में पडे कांटे से बचकर चलना चाहता है। लक्ष्मी भी शूर को कांटे की तरह समझकर उससे बचकर चलती है। महाभारत में कुन्ती ने शूर अपने पुत्रों की इस स्थिति की ओर संकेत करते हुए कहा है—भाग्यवन्तं प्रसूयेथा म शूरं मा च पण्डितम्। शूराश्च कृतविद्याश्च वने सीदन्ति मे सुताः।

दातारम्=(√दा+तृच्) दानी को। **दुःस्वप्नम् इव**=दुष्टः स्वप्नः दुःस्वप्न तम् इव=बुरे स्वप्न की भांति अशुभ। **न स्मरति**=याद नहीं करती, भुला देती है। हर व्यक्ति अशुभसूचक स्वप्न को स्मरण रखना नहीं चाहता, उसे भुला देना चाहता है; क्योंकि उसकी स्मृति से उसे व्यथा होती है। लक्ष्मी दानी को दुःस्वप्न की भांति ही भुला देना चाहती है, वह कृपण से प्यार करती है; क्योंकि कृपण को उससे प्यार है। **विनीतम्**=(वि+√नी+क्त) विनयशील को, विनम्र को। **पातकिनम् इव**=पातकानि अस्य सन्तीति पातकी (पातक+णिनी) तम् इव। पापी की भांति। **न उपसर्पति**=पास नहीं जाती है। 'पातकी दूरतस्त्याज्य' नीति के अनुसार हर व्यक्ति पातकी से बचना चाहता है। लक्ष्मी विनयशील व्यक्ति को मानो पातकी समझकर उससे दूर रहती है। उद्दण्डों के यहाँ उसका निवास है।

मनस्विनम्=प्रशस्तं मनः अस्य अस्तीति मनस्वी (मनस्+विनि) तम्। मनोबल या दृढ़ संकल्प वाले पुरुष को। **उन्मत्तम् इव**=पागल समझकर। **उपहसति**=मजाक उड़ाती है, उपहास करती है। सामान्यत उन्मादी को देखकर उसका मजाक उड़ाया जाता है, किन्तु यह लक्ष्मी ऐसी नासमझ है कि

विशुद्ध हृदय वाले दृढ़ संकल्प व्यक्ति का भी मजाक उड़ाती है और इस प्रकार सभी गुणों की उपेक्षा करके दुर्गुणों का आश्रय लेती है।

(१४) परस्परविरुद्धञ्चेन्द्रजालमिव दर्शयन्ती प्रकटयति जगति निजं चरितम्। तथा हि, सततमूष्माणमुपजनयन्त्यपि जाड्यमुजनयति। उन्नतिमादधानामपि नीचस्वभावतामाविष्करोति। तोयराशिसम्भवापि तृष्णां संवर्धयति। ईश्वरतां दधानप्यशिवप्रकृतित्वमातनोति। बलोपचयमाहरन्त्यपि लघिमानमापादयति। अमृतसहोदरापि कटुकविपाका। विग्रहवत्यप्यप्रत्यक्षदर्शना। पुरुषोत्तमरतापि खलजनप्रिया। रेणुमयीव स्वच्छमपि कलुषीकरोति।

हिन्दी अनुवाद—और संसार में जादू-सा दिखाती हुई यह लक्ष्मी अपना परस्पर विरोधी चरित्र प्रकट करती है। उदाहरण के लिए—निरन्तर ऊष्मा (१. गर्मी, २. दर्प) उत्पन्न करती हुई भी जड़ता (१. शीतलता, २. मूर्खता) उत्पन्न करती है। उन्नति (१. उच्चता, २. उत्कर्ष) को धारण करती हुई भी नीचस्वभावता (१. नीचापन, २. दूषितवृत्ति) प्रकट करती है। जलराशि से उत्पन्न होकर भी तृष्णा (१. प्यास, २. लोलुपता) बढ़ाती है। ईश्वरता (१. शिवत्व, २. ऐश्वर्य) को धारण करती हुई भी अशिवस्वभावता (१. शिवभिन्नता, २. अमङ्गलस्वभाव) को फैलाती है। बल में वृद्धि करती हुई भी हल्कापन (१. निर्बलता, २. तुच्छता) लाती है। अमृत की सगी बहन होकर भी कड़वे फल वाली (१. कटुफला, २. दुःखदपरिणामा) है। विग्रह (१. शरीर २. कलह) वाली होकर भी प्रत्यक्ष न दिखने वाली है। पुरुषोत्तम (१. श्रेष्ठ-पुरुष, २. विष्णु) में प्रेम रखकर भी नीच पुरुषों से प्रेम करने वाली है। रेणुमयी (धूलिनिर्मित रजोगुणनिर्मित) यह स्वच्छ (१. निर्मल, २. रागद्वेष शून्य) को भी कुलषित (१. मलिन, २. दोषी) बना देती है।

व्याख्या—**जगति**=संसार में। **इन्द्रजालम् इव**=इन्द्रस्य जालम् इन्द्रजालम् तद् इव। माया जाल-सा, जादू-सा, **दर्शयन्ती**=(√दृश्+णिच्+शतृ+ङीप्) दिखलाती हुई। **परस्परविरुद्धत्**=परस्पर विरुद्धम्। आपस में विरोधी एक दूसरे से असम्बद्ध। **निजचरितम्**=अपने आचरण को। **प्रकटयति**=प्रकट करती है, मायाजाल के लिए इन्द्रजाल शब्द का प्रयोग माया से इन्द्र का पुराना सम्बन्ध प्रकट करता है। वेदों में 'इन्द्रोमायाभिः पुरुरूप ईयते' इन्द्र रूप बनाता हुआ विचरण करता है, आदि स्थलों में माया से अनेक रूप बनाना वर्णित है। लक्ष्मी का परस्पर विरोधी रूप प्रदर्शन मानो इन्द्रजाल ही है।

तथाहि=उदाहरण के लिए, जैसे। **सततम**=(सम्+ततम्, म लोप) निरन्तर। **ऊष्माणम्**=गर्मी को। **उपजनयन्ती अपि**—(उप्+जन्+णिच्+शतृ+ङीप्) उत्पन्न करती हुई भी। **जाड्यम्**=(जड्+ष्यञ्) शीतलता को, जाड़े को। **उपजनयति**=उत्पन्न करती है। इस अनुच्छेद में 'ऊष्माण०' से लेकर पुरुषोत्तम्' तक विरोधाभास अलङ्कार है। यहाँ ऊष्मा और जाड्य उत्पन्न करने में विरोध है। जिसका समाधान ऊष्मा-मद और जाड्य-मूर्खता अर्थ से हो जाता है।

उन्नतिम्=(उत्+नम्+क्तिन्) ऊँचाई को। **आदधानामपि**=(आ+धा+शानच्+टाप्) धारण करती हुई भी। **नीचस्वभावताम्**=नीचः स्वभावः यस्या सा नीचस्वभावा तस्याः भावः नीचस्वभावता ताम्। नीचापन। **आविष्करोति**=प्रकट करती है। यहाँ ऊँचाई को धारण करते हुए भी नीचापन प्रकट करने में विरोध है, जिसका परिहार—उन्नति, उत्कर्ष तथा नीचस्वभावता—नीच (दूषित वृत्ति) अर्थ करने में हो जाता है। आर्थिक उत्कर्ष होने पर नीच वृत्तियों का हो जाना अस्वाभाविक नहीं।

तोयराशिसम्भवा अपि=तोयानां राशिः तस्मात् सम्भवतीति सम्भवा जलराशि (समुद्र) से उत्पन्न होने वाली भी। **तृष्णाम्**=प्यास को। **संवर्धयति**=बढ़ाती है। जलराशि से उत्पन्न होकर प्यास बढ़ाने में विरोध है। उसका परिहार—**तृष्णा**=लोलुपता अर्थ से हो जाता है।

ईश्वरताम्=ईश्वरता भावः ईश्वरता ताम् । शिवरूपता को । **वधाना**=(धा+शानच्+टाप्) **अपि**=धारण करती हुई भी । **अशिवप्रकृतित्वम्**=न शिवस्य प्रकृतिः अशिवप्रकृतिः तस्याः भावः अशिवप्रकृतित्वम् तत् । शिवभिन्न स्वभाव को । **आतनोति**=फैलाती है । शिवरूपता धारण करने पर शिव भिन्न प्रकृति का फैलाना विरोध है । उसका परिहार ईश्वरता का ऐश्वर्य व अशिव प्रकृतित्व का अमङ्गल स्वभाव अर्थ करने से हो जाता है ।

बलोपचयम्—बलस्य उपचयम् । बलवृद्धि को । **आहरन्ती** (आ+√हृ+शतृ+ङीप्) **अपि**=करती हुई भी । **लघिमानम्** (लघु+इमनिच्) निर्बलता को । **आपादयति**=लाती है उत्पन्न करती है । बलवृद्धि करते हुए भी निर्बलता लाने में विरोध है, जिसका परिहार लघिमा का तुच्छता अर्थ करने से हो जाता है । बल बढ़ने पर मनुष्य परपीड़न जैसी तुच्छता करने लगता है । शक्तिः परेषां परिपीडनाय ।

अमृतसहोदरा=अमृतस्य सहोदरा (समानम् उदरं यस्याः सा अमृत की सगी बहन । **कटुकविपाका:**=कटुकः विपाकः यस्याः सा, कड़वे फल वाली । अमृत जिसे स्वभावतः मधुर समझा जाता है—की बहन होकर फल का कडवा होना विरोध है जिसका परिहार कटुकविपाका का क्लेशकारी परिणाम वाली अर्थ करने से हो जाता है । लक्ष्मी के मिलने से जहाँ दूसरों को क्लेश होता है, वहाँ आपक को भी अन्त में कष्ट ही भोगना पड़ता है ।

विग्रहवती अपि=शरीर वाली होकर भी । **अप्रत्यक्षदर्शना**=नास्ति प्रत्यक्षं दर्शनं यस्याः सा, प्रत्यक्ष न दिखने वाली । शरीर होने पर भी प्रत्यक्ष न दिखने से प्रतीत विरोध का परिहार यों है—विग्रहवती युद्धों वाली, संघर्ष कलह कराने वाली ।

पुरुषोत्तमरतापि=पुरुषेषु उत्तमः पुरुषोत्तमः तस्मिन् रता अपि । श्रेष्ठ पुरुष में अनुराग रखकर भी । **खलजनप्रिया**=खलाश्च ये जनाः खलजना तेषां प्रिया । दुष्ट पुरुषों से प्यार करने वाली । श्रेष्ठ पुरुष में अनुराग रखकर खल-जनों से प्यार करना विरोध है । परिवार पक्ष में पुरुषोत्तमरता—भगवान् विष्णु में अनुरक्त होकर भी खलजनप्रिया—खलपुरुषों की भी प्रेयसी है । भगवान् तो लक्ष्मी रमण हैं, ही खलपुरुष भी लक्ष्मी से प्रेम करते हैं ।

रेणुमयी इव—रेणुना निर्मित रेणुमयी (रेणु + मयट् + ङीप्)। सा इव—धूलि से बनी हुई-सी। **स्वच्छम् अपि**=निर्मल को भी। **कलुषीकरोति**=अकलुष कलुष करोतीति (कलुष + च्वि + कृ + लट्) मलिन बना देती है। यहाँ स्वच्छ को भी मलिन बनाने में विरोध की प्रतीति है जिसका परिहार स्वच्छ रागद्वेषादिशून्य शुद्ध व्यक्ति को कलुष—रागद्वेषादियुक्त बनाने से हो जाता है। ऐसा करने के लिए लक्ष्मी को रेणुमयी रजोगुणनिर्मित समझना चाहिये।

(१५) यथायथा चेयं चपला दीप्यते तथा तथा दीपशिखेव कज्जलमलिनमेव कर्म केवलमुद्वमति। तथाहि इयं संवर्धनवारिधारा तृष्णाविषवल्लीनाम्, व्याधगीतिन्द्रियमृगाणाम्, परामर्शधूमलेखा सच्चरितचित्राणाम्, विभ्रमशय्या मोहदीर्घनिद्राणाम्, निवासजीर्णवलभी धनमदपिशाचिकानाम्, तिमिरोद्गतिः शास्त्रदृष्टीनाम् पुरः पताका सर्वाविनयानाम्।

हिन्दी अनुवाद—और जैसे-जैसे यह चञ्चला चमकती है। वैसे-वैसे दीपक की लौ के समान केवल काजल से मलिन कर्मों को ही उगलती है; क्योंकि यह तृष्णा की विष-बेलों को बढ़ाने वाली जलधारा है, इन्द्रियरूपी हरिणों को फँसाने के लिए बहेलियों का गीत है, सच्चरित्र रूपी चित्रों को ढक देने वाली धुएँ की रेखा है, मोहरूपी लम्बी नींद के लिए विलास भरी सेज है, धन मदरूपी प्रेतनियों के रहने के लिए टूटी-फूटी अटारी है, शास्त्ररूपी दृष्टियों के लिए तिमिर रोग की उत्पत्ति है, सब प्रकार के अविनयों के आगे फहराने वाली झण्डी है।

व्याख्या—**यथायथा च**=और ज्यों-ज्यों। **चपला दीप्यते**=यह चञ्चला लक्ष्मी चमकती है। **तथा-तथा**=त्यों-त्यों, वैसे-वैसे। **दीपशिखेव**=दीपस्य

शिखा इव—दीये की लौ की भाँति । कज्जलमलिनम्=कुत्सितं जलं कज्जलम् तद् इव मलिनम् कज्जलमलिनम्—काजल सा मलिन, तमोगुणी। कर्म उद्वमति=उगलती है, काम करती है । तथाहि=क्योंकि । इयम्—यह लक्ष्मी । तृष्णाविषवल्लीनाम्=विषस्य वल्लयः विषवल्लयः, तासाम् । तृणारूपी विष-बेलों की । संवर्धनवारिधारा=वारीणां धारा वारिधारा, संवर्धनाय वारि-धारा, बढ़ाने के लिए जलधारा । इस गद्य-खण्ड में 'इयं संवर्धन०' से लेकर राहुजिह्वा०' वाक्यांश तक रूपक अलंकार का प्रयोग है इन्द्रियमृगाणाम्= इन्द्रियाणि एव मृगाः इन्द्रियमृगा तेषाम् । इन्द्रिय रूपी हरिणों के (वशीकर-णार्थ) । व्याधगीतिः=व्याधानां गीतिः (गै+क्तिन्) बहेलियों या शिकारियों का गान । मृगों को फांसने के लिए शिकारी लोग आरम्भ में गीत गाया करते हैं। जिसे सुनकर शब्द प्रेमी मृग निकट आते हैं और बिछे हुए जाल में फंस जाते हैं। लक्ष्मी भी इन्द्रियों के लिए ऐसा मधुर आकर्षण है । शब्द-स्पर्श-रूप रस गन्ध के वश में होने का एक-एक प्राणी का नामनिर्देश शास्त्रों में मिलता है—कुरङ्ग मातङ्ग पतङ्ग मीनभृङ्गा हताः पञ्चभिरेव पञ्च । एकः प्रमादी सक न हन्यते यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च ॥

सच्चरितचित्राणाम्=सन्ति चरितानि सच्चरितानि तानि एव चित्राणि सच्चरितचित्राणि तेषाम् । सदाचाररूपी चित्रों की परामर्शधूमलेखा=धूमस्य-धूमलेखा, परामर्शाय धूमलेखा । ढकने के लिए धुंए की रेखा । धूमलेखा जैसे चित्रों को धूमिल बनाकर बिगाड़ देती है, लक्ष्मी भी सदाचार को दूषित कर देती है ।

मोहदीर्घनिद्राणाम्=दीर्घाः निद्राः, दीर्घनिद्राः मोहः एव दीर्घनिद्रा तासाम् मोहरूपी लम्बी या गहरी नींद के लिए । विभ्रमशय्या=विभ्रमस्य शय्या । विलास-भरी सेज, हिंडोला । सेज पर या हिंडोले पर पड़कर गहरी नींद जिस प्रकार अनायास ही आ जाती है, लक्ष्मी की प्राप्ति से उसी प्रकार मोह का आगमन होता है । सदसद्विवेकशून्यता ही मोह है ।

धनमदपिशाचिनाम्=धनस्यमदम् धनमदम् धनमदम् एव पिशाचिकाः तासाम् । धनमदरूपं, प्रेतनियों की । निवासजीर्णवलभी=जीर्णा चासौ वलभी

जीर्णवलभी, निवासाय जीर्णवलभी। रहने के लिए टूटी-फूटी अटारी। ऊजड़ मकानों में भूत-प्रेतों, पिशाचों के रहने की प्रसिद्ध लोक में है। लक्ष्मी में भी मद या घमण्ड का निवास है। इस वाक्य में धन शब्द का प्रयोग अनावश्यक है। केवल मद ही उपमेय होना चाहिये। धन तो मद का कारण ही है।

शास्त्रदृष्टिनाम्=शास्त्राणि एव दृष्टयः ताषाम्। शास्त्ररूपी लोचनों की। **तिमिरोद्गतिः**=तिमिरस्य उद्गतिः (उद्+गम्+क्तिन्) तिमिर नामक रोग की उत्पत्ति। तिमिर रोग में आँखों के आगे अँधेरा आ जाता है। उसे रतौंधी भी कहते हैं। इससे दर्शनशक्ति नष्ट हो जाती है। लक्ष्मी भी वेद स्मृति आदि शास्त्रों की मर्यादा को नष्ट करने वाली है। **पुरः पताका सर्वाविनयानाम्**=न विनयाः अविनयाः, सर्वे च ते अविनयाः, तेषाम्। हर प्रकार के दुराचारों की। पुरःपताका पुर-स्थिता पताका पुराः पताका। आगे उडने वाली झण्डी, आगे फहराने वाला झण्डा। जैसे आगे फहराने वाली पताका अपने पीछे रहने वाली रथ-हाथी-घोड़ा पैदल सेना का संकेत देती है, वैसे ही लक्ष्मी भी अपने पीछे हर प्रकार के दुराचारों की संकेतिका है॥

पीठ स्थल

(१६) उत्पत्तिनिम्नगा क्रोधावेगग्राहाणाम्, आपानभूमिर्विषय मधूनाम्, सङ्गीतशाला भ्रूविकारनाट्यानाम्। आवासदरीदोषाशीविषाणाम् उत्सारणवेत्रलता सत्पुरुषव्यवहाराणाम्, अकालप्रावृड्गुण-कलहंसकानाम्, विसर्पणभूमिर्लोकापवादविस्फोटकानाम्, प्रस्तावना कपटनाटकस्य, कदलिका कामकरिणः, वध्यशाला साधुभावस्य, राहुजिह्वा धर्मेन्दुमण्डलस्य।

हिन्दी अनुवाद—लक्ष्मी क्रोध के आवेशरूपी मगरमच्छों की उत्पत्ति के लिए नदी है, विषयरूपी मदिरा के पीने का स्थान है, भृकुटी-विकाररूपी अभिनयों का रङ्गमञ्च है, दोषरूपी विषैली सर्पों के रहने की गुफा है, शिष्टाचारों को हटाने की बेंत की छड़ी है, गुणरूपी मधुरभाषी हंसों के लिए अकाल-वर्षा

है, लोक निन्दारूपी फोड़ों के फैलने की जगह है, कपटरूपी नाटक की प्रस्तावना है, कामरूपी हाथी के लिए केले का वन है, सज्जनता का सत्याग्रह है, धर्मरूपी चन्द्रमण्डल के लिए राहु की जीभ है।

व्याख्या —क्रोधावेगग्राहाणाम्=क्रोधस्य आवेगाः क्रोधावेगाः ते ग्राहाः क्रोधावेगग्राहाः तेषाम्। क्रोध के आवेशरूपी मगरमच्छों की। **उत्पत्तिनिम्नगा**=निम्नं गच्छतीति निम्नगा उत्पत्तेः निम्नगा उत्पत्ति निम्नगा=जन्म देने वाली नदी। नदी से जिस प्रकार मगरमच्छ आदि जलजीवों की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार क्रोध के आवेशों को जन्म देने वाली लक्ष्मी।

विषयमधूनाम्—विषयाः एव मधूनि तेषाम्। विषयरूपी मदिराओं की। **आपानभूमिः**=आपानस्य भूमिः। पानगोष्ठी का स्थान। आपान शब्द पारिभाषिक है, जिसका अर्थ है वह गोष्ठी या मण्डली जिसमें सब मिलकर मदिरापान करते हैं। संस्कृत में अकेला पान शब्द सुरापान के लिए ही आता है। जैसे पान दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम्। स्वप्नोऽन्यगृहेवासश्च नारीणां दूषणानि षट्॥

भ्रूविकारनाट्यानाम्=भ्रुवोः विकाराः भ्रूविकाराः तेषां नाट्यानि तेषाम्। भौंहों के विकार रूपी अभिनयों को। **सङ्गीतशाला**=सङ्गीतस्य शाला। रङ्गशाला, यह रङ्गमञ्च। सङ्गीतशाला उस सम्पूर्ण भवन का नाम है जहाँ अभिनेता तथा दर्शक का कार्यस्थल है। रङ्गमञ्च केवल उस स्थान को कहते हैं जहाँ अभिनय किया जाता है। यहाँ अभिनयों की सङ्गीतशाला के नाम से सङ्गीतमञ्च या रङ्गमञ्च का ही संकेत किया गया है। लक्ष्मी के आने पर पुरुष भौंहें चढ़ाकर बातचीत करने लगते हैं।

दोषाशीविषाणाम्=दोषा एव आशीविषाः तेषाम्। दोषरूपी विषैली सर्पों की आशीविषाः— आशी-दाढ़ी, आशीषु विषं येषां ते। जिनकी दाढ़ी में विष होता है, वे सर्प। **आवासदरी**=आवासाय दरी। रहने के लिए कन्दरा या गुफा। काम आदि अनेक दोषों का लक्ष्मी में निवास माना जाता है।

सत्पुरुषव्यवहाराणाम्=संतः पुरुषाः सत्पुरुषाः तेषां व्यवहारा तेषाम्।

श्रेष्ठ पुरुषों के आचारों की, शिष्टाचार की। **उत्सारणवेत्रलता** = उत्सारणाय वेत्रस्य लता। दूर करने के लिए बेंत की छड़ी। लक्ष्मी के आने पर शिष्टाचार आदि गुण दूर हो जाते हैं। पहले अनुच्छेद से सर्वाङ्गरूपक की चली आ रही परम्परा में बाण ने इस वाक्य में 'सत्पुरुषव्यवहार' उपमेय के लिए कोई उपमान नहीं दिया, जबकि इस अनुच्छेद की समाप्ति तक परम्परा का निर्वाह किया गया है। यहाँ साङ्गरूपक न होकर केवल निरङ्गरूपक अलङ्कार है। **गुणकलहंसकानाम्** = कलाश्च ते हंसा कलहंसाः ते एव कलहंसकाः (स्वार्थ में कन्) गुणाः एव कलहसकाः तेषाम्। गुणरूपी मधुरभाषी हंसों के लिए। **अकाल-प्रावृट्** = अविद्यमान कालः, यस्या सा अकाला चासौ प्रावृट्। असमय की वर्षा। सामान्यतः वर्षाऋतु में हंस इधर के सरोवरों को छोड़कर मानसरोवर की ओर चले जाते हैं। शरद् ऋतु में वे पुन. लौट आते हैं। पौष से लेकर चैत्र तक की असमय की वर्षा में इधर रहने वाले हंसों को बड़ी कठिनाई रहती है। शीत के कारण वे मानसरोवर जा नहीं पाते और वर्षा के कारण ये सरोवर भी उनके रहने योग्य नहीं होते। लक्ष्मी के आने पर पुरुष के गुणों की भी यही दुर्दशा होती है। मुहूर्तचिन्तामणि ग्रन्थ में—'यदि मास्तु चतुर्षु पौषमसादि वृष्टि हि भवेदकालवृष्टिः' पंक्ति में पौषादि चार मासों की वर्षा को ही अकालवृष्टि कहा है।

लोकापवादविस्फोटकानाम् = लोकेषु अपवादाः लोकापवादाः ते एव विस्फोटकाः (वि + √स्फुट + अच् + स्वार्थ में कन्) लोकनिन्दारूपी फोड़ों की। **विसर्पणभूमिः** = विसर्पणाय भूमि। फैलने के लिए उचित स्थान। चरकसंहिता में विसर्प तथा विस्फोट नामक रोगों का विस्तार से वर्णन किया गया है। चर्म पर पहले रोग होता है और उचित चिकित्सा के अभाव में उसी स्थल पर विस्फोट हो जाते हैं। विस्फोट का पूर्वरूप विसर्प है। विसर्प की भूमि या विसर्पणभूमि में विस्फोट की भाँति लक्ष्मी के स्थान (पुरुष) में बदनामी नया-नया रूप लेकर फैलती है।

कपटनाटकस्य = कपट एव नाटकम्, तस्य। छलरूपी नाटक की प्रस्तावना (प्र + √स्तु + णिच् + युच् + टाप्) प्रारम्भ, आमुख। नाटकों के प्रारम्भ में सूत्रधार जब नटी, पार्श्ववर्ती पात्र अथवा विदूषक से इस प्रकार का संलाप करे

जिससे प्रस्तुत विषय का पता चल जाये तो उसे प्रस्तावना कहा जाता है। लक्ष्मी का आगमन पुरुष के कपट व्यवहारों से परिचित करा देता है।

कामकरिणः=कामः एव करी तस्य। कामरूपी हाथी को। **कदलिका**= केले की वाटिका। कदलीवन में हाथी के स्वच्छन्द विहार की भाँति लक्ष्मी वाले पुरुष में कामना का निर्बाध विहार होता है।

साधुभावस्य=साधोः भावः तस्य। सज्जनता का। **वध्यशाला**=वधम् अर्हति वध्यः (वध् + यत्) तेषां शाला। हत्यागृह जहाँ ले जाकर पशुओं का वध किया जाता है। लक्ष्मी के आने पर सज्जनता समाप्त हो जाती है।

धर्मेन्दुमण्डलस्य=इन्दोः मण्डलम् इन्दुमण्डलम् धर्मः एव इन्दुमण्डलम् तस्य। धर्मरूपी चन्द्रमण्डल के लिए। **राहुजिह्वा**=राहोः जिह्वा। राहु की जीभ। राहु जैसे चन्द्रमा को ग्रसता है, लक्ष्मी भी वैसे ही धर्म कर्म को निगल जाती है। ज्योतिष् के अनुसार राहु भूमिछाया का रूप धारण कर पूर्णिमा को चन्द्र-विम्ब को ढकता है और चन्द्रछाया के रूप में अमावस्या में सूर्य को। पौराणिक भाषा में इसे ही चन्द्रग्रास या राहूपराग कहा जाता है।



(१७) न हि तं पश्यामि योह्यपरिचितयानया न निर्भरमुपगूढः यो वा न विप्रलब्धः। नियतमियमालेख्यगतापि चलति, पुस्तमय्यपीन्द्रजालमाचरति, उत्कीर्णापि विप्रलभते, श्रुताप्यभिसंधत्ते, चिन्तितापि वञ्चयति। एवं विधयापि चानया दुराचारया कथमपि देववशेन परिगृहीता विक्लवा भवन्ति राजानः सर्वाविनयाधिष्ठानतां च गच्छन्ति।



हिन्दी अनुवाद—मैं ऐसे किसी पुरुष को नहीं देखता हूँ जिसे इस अपरिचित ने पूरी तरह से न अपनाया हो अथवा जिसे धोखा न दिया हो। निश्चित रूप से, यह चित्रलिखित होती हुई भी चञ्चलता दिखाती है, पुतली बनाकर रखी हुई भी जादू दिखाती है, पत्थर में खोदकर रखी हुई भी धोखा देती है, सुनी

हुई भी छल करती है, सोची हुई भी ठगती है और इस प्रकार की भी इस दुराचारिणी से जैसे-तैसे भाग्यवश ग्रहण किये गये (अपनाये गये) राजा लोग विह्वल हो जाते हैं और सब दुराचारों के निवास-स्थान बन जाते हैं।



व्याख्या—**हि**=वस्तुत:, सचमुच। **तम्**=ऐसे किसी पुरुष को, उसको। **न पश्यामि**=नहीं देखता हूँ अर्थात् ऐसा कोई पुरुष दिखायी नहीं देता। **य:**=जिसे। **हि**=निश्चय ही। **अनया अपरिचितया**=न परिचितया (पर+√चि+क्त+टाप्) अपरिचिता तया। इस अपरिचिता लक्ष्मी ने। **निर्भरम्**=पूरी तरह से। **न उपगूढ:**=(उप+गूह+क्त) आलिङ्गन न किया हो। **वा**—अथवा। 'वा' 'च' 'हि' आदि ऐसे अव्यय हैं जो वाक्य के प्रारम्भ में प्रयुक्त नहीं होते। जिन-जिनका पार्थक्य या मिलन इष्ट होता है उसमें अन्तिम पद के पश्चात् इनका प्रयोग होता है। **य: न विप्रलब्ध**=(वि+√लभ्+क्त) जिसे धोखा न दिया हो। लक्ष्मी की निर्लज्जता का प्रतिपादन किया गया है और धोखा देने के कथन से उसकी मर्यादाहीनता का संकेत किया गया है। इस प्रकार अपरिचिता शब्द के यहाँ दो अर्थ निकलते हैं—(१) पूर्वपरिचयशून्या नवागन्तुक, (२) परिचय को ठुकरा देने वाली कुलटा। 'निर्भरम्' पद में क्रिया विशेषण होने से द्वितीया, एकवचन व नपुंसकलिङ्ग है।

नियतम्=(नि+√यम्+क्त) निश्चय ही। **इयम्**=लक्ष्मी। **आलेख्यगता**=आलेख्यम् (आ+लिख्+ण्यत्) गता। चित्ररूप को प्राप्त हुई, चित्रलिखित। **अपि**=भी, यद्यपि चाहे। **चलति**=चलती है, चञ्चलता दिखाती है, चली जाती है। **पुस्तमयी अपि**=(पुस्त+मयट्+ङीप्) पुतला बनाकर रखी हुई भी। **इन्द्रजालम्**=इन्द्रजाल। जादू, मायाजाल। **आचरति**=दिखाती है। पुस्त शब्द की परिभाषा देते हुए अमरकोश में 'पुस्तं लेप्यादिकर्मणि' लिखा है जिसका अर्थ है—मिट्टी आदि से पुतली बनाने का काम, इसी का स्पष्टीकरण-मृदा वा दारुणा वाथ वस्त्रेणाप्यथ चर्मणा। लोह रत्नै कृतं वापि पुस्तमित्यभिधीयते॥ इस श्लोक से टीका में अर्थ किया गया है। **उत्कीर्णा अपि**=(उत्+

√कृ + क्त + टाप्) पत्थर में खोदकर रखी हुई भी। **विप्रलभते** = (वि + प्र + लभ् + लट्) छोड़कर चल देती है, धोखा देती है। यहाँ कवि ने क्रमशः आलेख्य पुस्त तथा उत्कीर्ण शब्द का प्रयोग करके चित्रकला, मूर्तिकला तथा तक्षण (शिल्प) कला की ओर संकेत किया है। हर प्रकार से लक्ष्मी को वञ्चिका सिद्ध करना ही कवि को इष्ट है। **श्रुता अपि** = (√श्रु + क्त + टाप्) सुनी हुई भी। **अभिसंधत्ते** = (अभि + सम् + धा + लट्) छल करती है। लक्ष्मी का नाम कान में भी पड़ जाये तो भी धोखा लग जाता है। **चिन्तिता अपि** = (चिति + क्त + टाप्) सोची गयी भी—ध्यान में रखी गयी भी। **वञ्चयति** = धोखा दे देती है। आने की पूर्ण सम्भावना बन जाने पर भी नहीं आती। इस प्रकार यह लक्ष्मी लोगों को हर स्थिति में धोखा ही देती है।

च—तथापि = इतना होने पर भी। कुछ स्थलों पर पूर्वस्थिति से असंतोष प्रकट करने के लिए अगली स्थिति के प्रतिपादक वाक्य में च का प्रयोग होता है; जैसे—यहाँ एक तो लक्ष्मी आलक्ष्यगता होती हुई भी चली जाती है और दूसरी ओर ऐसी लक्ष्मी को भी पाकर राजा लोग विह्वल हो जाते हैं। **एवं विधया अपि** = एवम् विधाः यस्याः ता, तया अपि—इस प्रकार की लक्ष्मी से भी। **अनया दुराचारया** = दुष्टः आचारः यस्या. सा तया—इस दुराचारिणी से। **कथम् अपि** = जैसे-तैसे, बड़ा क्लेश उठाकर, यदा-कदा। **दैववशेन** = दैवस्य वशेन। भाग्यवशात्, भाग्य के अनुकूल होने पर। **परिगृहीताः** = (परि + √ग्रह + क्त) स्वीकार किये गये, अपनाये गये। **राजानः** = राजा लोग। **विक्लवाः** = (वि + √क्लु + अक्) विह्वल, बेसुध, नासमझ। **भवन्ति**: हो जाते हैं, बन जाते हैं। **सर्वाविनयाधिष्ठानताम्** = न विनयाः अविनयाः सर्वं च ते अविनयाः तेषाम् अधिष्ठानम् (अधि + √स्था + ल्युट्) सर्वाविनयाधिष्ठानम् तस्य भावः सर्वाविनयाधिष्ठानता ताम्। सम्पूर्ण दुराचारों के विनाश स्थानता को। **गच्छन्ति** = प्राप्त हो जाते हैं। कभी-कभी गमन का भाव मुहावरे के रूप में प्रकट किया जाता है वहाँ गमन की वास्तविक क्रिया न होकर केवल काल्पनिक होती है; जैसे—वह दुःखी हुआ—सः विषादम् अगच्छत्, सुमुखी (पार्वती) बाद

में उमा नाम से विख्यात हुई—पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम । यहाँ भी, स्थान बन जाते हैं—अधिष्ठानतां गच्छन्ति ऐसा ही प्रयोग है ।

(१८) तथाहि—अभिषेकसमय एव चैनषां मङ्गलकलशजलैरिव प्रक्षाल्यते दाक्षिण्यम्, अग्निकार्यधूमेनेव मलिनी क्रियते हृदयम् पुरोहितकुशाग्रसंमार्जिनीभिरिवापह्रियते क्षान्तिः, उष्णीषपट्टबन्धेनेवाच्छाद्यते जरागमनसारणम्, आतपत्रमण्डलेनेवापसार्यते परलोकदर्शनम् चामरपवनैरिवापह्रियते सः सत्यवादिता वेत्रदण्डैरिवोत्सार्यन्ते गुणाः, जयशब्दकलकलरवैरिव तिरस्क्रियन्ते साधुवादाः, ध्वजपटपल्लवैरिव परामृश्यते यशः ।

हिन्दी अनुवाद—उदाहरण के लिए राज्याभिषेक के समय ही इनकी उदारता मानो, मङ्गलकलशों में धो दी जाती है, यज्ञकर्म के धुंए से मानो हृदय मलिन कर दिया जाता है, पुरोहित की कुशाओं के अग्रभागरूपी बुहारियों से मानो सहनशीलता दूर फेंक दी जाती है, पगड़ी के बाँधने से मानो बुढ़ापे के आगमन की स्मृति ढक दी जाती है, छत्रमण्डल से मानो परलोक दृष्टि रोक दी जाती है, चँवर की हवा से मानो सत्य बोलने की आदत उड़ा दी जाती है, बेंत की छड़ियों से मानो गुण हटा दिये जाते हैं, जय-जयकार के कोलाहल की ध्वनि से मानो अच्छे वचन तिरस्कृत कर दिये जाते हैं, ध्वजों की पल्लव सदृश पताकाओं से मानो यश पोंछ दिया जाता है ।

व्याख्या—तथाहि=जैसे कि, उदाहरण के लिए । सम्पूर्ण दुराचारियों की निवास स्थानता का समर्थन करते हुए अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं । **अभिषेकसमये**=अभिषेकस्य समये । राज्याभिषेक के समय जब लक्ष्मी का आगमनकाल होता है, तभी । एव=ही । 'एव' अव्यय सामान्यतः 'केवल' अर्थ को बताया करता है, किन्तु ऐसे स्थलों पर उसका अर्थ 'तत्क्षण' हुआ करता है ।

अभिषेक समय 'एव' का अर्थ 'केवल अभिषेक के समय' नहीं है, अपितु 'जब अभिषेक का समय होता है, उसी 'क्षण' है। **एषाम्**=राजाओं की। **दाक्षिण्यम्** =(दक्षिण+ष्यञ्) उदारता, दानशीलता। **मङ्गलकलशजलैः**=मङ्गलाय कलशा मङ्गल कलशाः येषाम् जलैः। मङ्गल के लिए लाये गये घड़ों के जलों से। कर्म-काण्डप्रथा के अनुसार प्रत्येक शुभ कार्य के पूर्व देवपूजन होता है और यजमान का मङ्गल कल्याण करने की कामना से मङ्गलकलश की स्थापना होती है। मङ्गल कलश के जल से यजमान का अभिषेक होता है। राज्याभिषेक के समय विभिन्न तीर्थों के जलों से स्नान कराया जाता है; अतः यहाँ कलश तथा जल को बहुवचन में रखा गया है। **प्रक्षाल्यते इव**=मानो धो दी जाती है। अभिषेक काल में ही उदारता समाप्त हो जाती है। इस वाक्य को लेकर 'ध्वजपट-पटलैः' तक क्रियोत्प्रेक्षा अलङ्कार का प्रयोग किया गया है। इस वाक्य के अभिषेक समय एवैषाम् का सम्बन्ध अगले 'ध्वजपटपटलैः' तक प्रत्येक वाक्यांश के साथ है। **अग्निकार्यधूमेन**=अग्ने कार्यम् अग्नि कार्यम्, तस्य धूमेन। अग्नि-होत्र या यज्ञ के धुँए से। **हृदयम्**=मन। **मलिनीक्रियते इव**=अमलिन मलिनं क्रियते इति मलिनी क्रियते। मानो मैला कर दिया जाता है। संस्कृत साहित्य में चित्त मन तथा हृदय का समानार्थक रूप में प्रयोग पाया जाता है। यद्यपि अमरकोश में एक स्थल पर 'बुक्काग्रमांसम्' कहकर कलेजा कही जाने वाली मांसग्रन्थि के लिए बुक्का व अग्रमां का तथा 'हृदयं हृत्' कहकर भीतर के भाग के लिए हृदय व हृत् शब्द का उल्लेख किया है तथापि दूसरे स्थान पर 'चित्त तु चेतो हृदयं स्वान्तहृन्मानसं मनः' कहकर इन सबको पर्याप्त बताया है। कालिदास ने 'भवहृदय साभिलाषम् मनः' कहकर मन के स्थान पर हृदय का ही प्रयोग किया है। यहाँ भी मन के लिए ही शब्द का प्रयोग है। **क्षान्तिः**=(क्षम् +क्तिन्) क्षमा, सहनशीलता। **पुरोहितकुशाग्रसंमार्जनीभिः**=कुशानाम् अग्राणि कुशाग्राणि तानि एव संमार्जनयः पुरोहितानां कुशाग्रसमार्जन्यः पुरोहितकुशाग्र-मार्जन्यः ताभिः। पुरोहितों के हाथों की कुशाओं के अग्रभाग रूपी मार्जनी से। मार्जन शब्द का अर्थ है शुद्धि। पुरोहित कुशा लेकर यजमान का मन्त्रों से मार्जन किया करता है। **अपह्रियते इव**=मानो दूर फेंक दी जाती है। **जरागमनस्मरणम्** =जरायाः आगमनम् जरागमनम् तस्य। **स्मरणम्**=बुढ़ापे के आने का ध्यान।

उष्णीषपट्टबन्धेन=उष्णीस्य पट्टः उष्णीषपट्टः तस्य बन्धः उष्णीषपट्टबन्धः तेन-पगड़ी बाँधने से। **उष्णीषपट्ट**=पगड़ी का रेशमी वस्त्र। **आच्छाद्यते इव**=मानो ढक जाती है। वृद्धावस्था के आगमन का ध्यान न रहने पर अनेक कुकर्म करने में झिझक नहीं रहती। **परलोकदर्शनम्**=परश्चासौ लोकः परलोकः तस्य दर्शनम्। परलोक दृष्टि मृत्यु के बाद की स्थिति। **आतपत्रमण्डलेन**=आतपात् त्रायते इति आतपत्रम् तस्य मण्डलेन। छत्र मण्डल से। **अपसार्यते इव**=मानो रोक दी जाती है। 'कुकर्म करने से परलोक में क्या दशा होगी' इसका विचार नहीं रह पाता। **सत्यवादिता**=सत्यं वदतीति सत्यवादी तस्य भावः। सच बोलने की आदत। **चामरपवनैः**=चमर्याः इमानि चामराणि (चमरी+अण्) तेषां पवनैः, चँवर की हवा से, चँवर डोलने से उत्पन्न हवा के झोंकों से। चमरी नाम का एक पशु होता है जिसकी पूँछ के बालों से चँवर बनता है। **अपह्रियते इव**=मानो उड़ा दी जाती है। सामान्यतः एकवचन में बोला जाने वाला शब्द जब बहुवचन में प्रयुक्त होता है या अपनी वृत्तियों या क्रियाओं का संकेत किया करता है। जैसे—"प्रायः समापन्नविपत्तिकाले, धियोऽपि पुंसां मलिनी भवन्ति।" तथा "विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः।" सूक्तियों में धी तथा चेतस् शब्द में बहुवचन उनकी वृत्तियों का संकेत है। यहाँ पवन शब्द में बहुवचन 'पवन के झोंके' अर्थ का संकेत है। **गुणाः**=दया, शौर्य आदि गुण। **वेत्रदण्डैः**=वेत्रस्य दण्डैः। बेंत की छड़ियों से। यहाँ भी दण्ड शब्द में बहुवचन उसकी उत्सारण क्रिया की विविधता का संकेत है। **उत्सार्यन्ते इव**=मानो हटा दिये जाते हैं।

साधुवादाः—साधवश्च ते वादाः (√वद्+घञ्) साधुवादाः। अच्छे वचन। अथवा—साधु इति वादाः साधुवादाः बहुत अच्छा इस प्रकार के प्रशंसात्मक वचन। **जयशब्दकलकलरवैः**=कल प्रकाराः कल कलाः (सादृश्य अर्थ में द्वित्व-कलकलाश्चय ते)। **रवाः**=कलकलरवाः, जय शब्दस्य कलकलरवाः जयशब्दकल-कलरवाः तैः जय-जयकार के कोलाहल भरे अस्पष्ट शब्दों से। **तिरस्क्रियन्ते इव**=मानो अपमानित कर दिये जाते हैं। राजा लोग जय-जयकार के कोलाहल में अच्छी बात नहीं सुन पाते। **यशः**=कीर्ति। **ध्वजपटपल्लवैः**=ध्वजानां पटाः

ध्वजपटा: ते पल्लवानि इव ध्वजपल्लवानि तै: पल्लव सदृश ध्वजों की पताकाओं से । परामृश्यते इव = मानो पोंछ दी जाती है । अभिषेक के पूर्व अर्जित यश को राजलक्ष्मी पाते ही राजा लोग खो बैठते हैं ; इस प्रकार अभिषेक काल में ही गुणों की समाप्ति और दुर्गुणों का निवास हो जाता है ।

(१९) केचिच्छ्रमवशशिथिलशकुनिगलपुटचपलाभि: खद्योतोन्मेष-मुहूर्तमनोहराभिर्मनस्विजनगर्हिताभि: सम्पद्भि: प्रलोभ्यमाना: धन-लवलाभावलेपविस्मृतजन्मानोऽनेकदोषोपचितेन दुष्टासृजेव रागावेशेन बाध्यमाना: विविधविषयग्रासलालसै पञ्चभिरप्यनेकसहस्रसख्यैरि-वेन्द्रियरायास्यमाना: प्रकृतिचञ्चलतया लब्धप्रसरेणैकेनापि सहस्रता-मुपगतेन मनसा आकुलीक्रियमाणा विह्वलतामुपयान्ति ।

हिन्दी अनुवाद—कुछ राजा लोग थकान के कारण शिथिल पक्षी के कण्ठ देश की भाँति चञ्चल जुगनू के प्रकाश की भाँति थोड़ी देर के लिए मनोहर और मनस्वी जनों द्वारा निन्दित सम्पत्तियों के प्रलोभन मे आते हुए थोड़ा-सा धन मिल जाने के घमण्ड से अपने जन्म की बात भूलकर (वात-पित्त कफजनित) अनेक दोषों से व्याप्त विकृत रक्त की भाँति (काम क्रोधादि-जनित) अनेक दोषों से बढ़े हुए विषयानुराग के आवेश से कष्ट पाते हुए अनेक विषयों के उपभोग में लालसा रखने (वाली इन पाँच) होती हुई भी मानो अनेक सहस्र संख्या वाली इन्द्रियों से क्लेष पाते हुए तथा स्वभाव से चञ्चल होने के कारण अवसर पाकर एक होते हुए भी हजार रूप में दिखने वाले मन से व्याकुल किये जाते हुए विह्वलता को प्राप्त हो जाते हैं ।

व्याख्या—केचित् = कुछ राजा लोग । श्रमवशशिथिलशकुनिगलपुट-चपलाभि:—श्रमस्य वशेन शिथिल: श्रमवशशिथिल: शकुने: गल:, शकुनिगल:

श्रमवशशिथिलश्चासौ शकुनिगलः श्रमवशशिथिल शकुनिगलः तस्य पुटम् तद्वत् चपलाभिः। थकान के कारण पक्षी के शिथिल पड़े गलप्रदेश (कण्ठ) की भाँति फड़कती हुई या अस्थिर। **खद्योतोन्मेषमुहूर्तमनोहराभिः**=खे द्योतते इति खद्योतः तस्य उन्मेष खद्योतोन्मेषः, मनः हरन्तीति मनोहराः मुहूर्तं मनोहरा मुहूर्तमनोहराः, खद्योतोन्मेषवद् मुहूर्तमनोहराः खद्योतोन्मेषमुहूर्तमनोहराः ताभिः। जुगनू के प्रकाश की भाँति थोड़ी देर के लिए मन को हरने वाली। **मनस्विजनगर्हिताभिः**=मनस्विनश्च ते जनाः मनस्विजनाः तैः गर्हिताभिः ज्ञानी लोगों द्वारा निन्दित। **सम्पद्भिः**=सम्पत्तियों मे। **प्रलोभ्यमानाः**=(प्र+√लुभ+णिच् +यक् कर्मवाच्य+शानच्) लुभाये जाते हुए, लालच में फँसाये जाते हुए। यह 'केचित्' की विशेषता बता रहा है।

धनलवलाभावलेपविस्मृतजन्मानः= धनस्यलवः धनलवः तस्य लाभ धनलवलाभः तस्माद् अवलेपः धनलवलाभावलेपः तेन विस्मृतं जन्म यैः ते। थोड़े से धन की प्राप्ति से उत्पन्न घमण्ड से जिन्होंने जन्म की बातें भुला दी हैं। निर्धन माता-पिता का पुत्र जब गोद लिया जाकर किसी राजा के यहाँ पहुँच जाता है तो धन के घमण्ड में अपनी जन्म दशा भूल जाता है। **अनेकदोषोपचितेन**= अनेक च ते दोषाः अनेकदोषाः तैः उपचितेन (उप+√चि+क्त)। यह दूषित रक्त तथा रागवेश का विशेषण है। रक्तपक्ष में इसका अर्थ होगा—वात-पित्त-कफ जनित अनेक दोषों से व्याप्त, रागावेशपक्ष में—काम क्रोध आदि अनेक दोषों में वृद्धि को प्राप्त।

दुष्टासृजा इव=दुष्टम् (√दुष्+क्त) च तत् असृक् दुष्टासृक् तेन इव दूषित रक्त की भाँति। **रागावेशेन**=रागस्य आवेशेन। विषयों के प्रति अनुराग की उत्तेजना से। **बाध्यमानाः**=(√बाध्य+यक्+शानच्) कष्ट पाते हुए। यह 'केचित्' की दूसरी विशेषता है।

विविधविषयग्रासलालसैः विविधाश्च ते विषयाः विविधविषयाः तेषां ग्रासलालसा येषां तैः। अनेक विषयों के उपभोग में लालसा है जिनकी। यह इन्द्रिय का विशेषण है। **पञ्चभिः अपि**=पाँच होते हुए भी शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध का उपभोग करने वाली पाँच। **ज्ञानेन्द्रियाँ**=श्रोत्र-त्वक्-चक्षु-रसना-घ्राण। **इव**=मानो। **अनेकसहस्रसंख्यैः**=अनेकानि च तानि सहस्राणि अनेकसहस्र

तानि संख्या येषां तैः । कई हजार संख्या वाली । विषयों की अधिकता के कारण पाँच होती हुई भी इन्द्रियाँ हजारों जैसी लगने लगती हैं । **इन्द्रियैः**= ज्ञानेन्द्रियों से । **आयास्यमानाः** (आ + √यास् + णिच् + यक् + शानच्) क्लेश पाते हुए, परेशान होते हुए । यह 'केचित्' की तीसरी विशेषता है ।

प्रकृतिचञ्चलतया=प्रकृत्या चञ्चलम् प्रकृतिचञ्चलम् तस्य भावः प्रकृतिचञ्चलता तया । स्वभाव से चञ्चल होने के कारण । मन स्वभाव से ही चञ्चल होता है (चञ्चलं हि मनः कृष्ण ! प्रमाथि बलवद् दृढम्) । **लब्धप्रसरेण**= लब्धः (लभ् + क्त) प्रसरः (प्र + सृ + अप्) येन तेन । जिसने अवसर पा लिया है उससे । **एकेन अपि**=एक होते हुए भी । **सहस्रताम् उपगतेन**=सहस्रता को प्राप्त हजार की संख्या में प्रतीत होने वाले । **मनसा**=चित्त से ।

आकुलीक्रियमाणाः=अनाकुलाः आकुलाः क्रियमाणाः आकुली क्रियमाणाः— व्याकुल बनाये जाते हुए 'केचित्' की चौथी विशेषता है । **विह्वलताम्**= विकलता को । **उपयान्ति**=प्राप्त हो जाते है । इस वाक्य में सम्पत्ति का लोभ, राग का आवेश, विषयलोलुप इन्द्रियाँ तथा चञ्चल मन इन चारों से होने वाली विकलता का संकेत किया गया है ।

---

(२०) ग्रहैरिव गृह्यन्ते, भूतैरिवाभिभूयन्ते, मन्त्रैरिवावेश्यन्ते, सत्त्वैरिवावष्टभ्यन्ते, वायुनेव विडम्बयन्ते, पिशाचैरिव ग्रस्यन्ते, मदनशरैर्मर्माहता इव मुखभङ्गसहस्राणि कुर्वते, धनोष्मणा पच्यमाना इव विचेष्टन्ते, गाढप्रहाराहता इवाङ्गानि न धारयन्ति । कुलीरा इव तिर्यक् परिभ्रमन्ति अधर्मभग्नगतयः पङ्गव इव परेण सञ्चार्यन्ते ।

हिन्दी अनुवाद—वे राजा लोग मानो ग्रहों से घेर लिये जाते हैं, मानो भूतों से दबा लिए जाते हैं, मानो मन्त्रों से आविष्ट कर दिये जाते हैं, मानो हिंसक जन्तुओं से पकड़ लिये जाते हैं, मानो वायु से पीड़ित किये जाते हैं, मानो

पिशाचों से निगल लिये जाते हैं, मानो कामदेव के बाण से मर्मस्थल पर चोट खाकर सहस्रों मुखविकार करते हैं (तरह-तरह का मुँह बनाते हैं)। मानो धन की गर्मी से झुलसते हुए, छटपटाते हैं, मानो तीव्र प्रहारों से घायल होकर अङ्गों को नहीं सँभाल पाते, केकड़ों की भाँति टेढ़े चलते हैं, पाप के कारण नष्ट गति वाले, पङ्गुओं की भाँति दूसरे से चलाये जाते हैं।

व्याख्या—इन्द्रियों तथा मन के वशीभूत होकर विह्वल होने वाले राजाओं की स्थिति का इस अनुच्छेद में उत्प्रेक्षा द्वारा वर्णन किया गया है। **ग्रहैः**=क्रूर शनि आदि ग्रहों से। **गृह्यन्ते इव**=मानो घेर लिये जाते हैं। ग्रहगृहीत व्यक्ति को जैसे शान्ति नहीं मिलती, इन्द्रियलोलुप भी वैसे ही अप्रान्त रहता है। ग्रहों मे शनि, राहु, केतु, मङ्गल तथा रवि ये असौम्य ग्रह माने गये हैं और चन्द्र, बुद्ध, गुरु व शुक्र, सौम्य। यहाँ असौम्य या क्रूर ग्रहों के घिरने की ही उत्प्रेक्षा है। **भूतैः**=भूत-प्रेतों से। **अभिभूयन्ते इव**=मानो दबा लिये जाते हैं। भूतबाधा लग जाने पर प्राणों की सुखशान्ति समाप्त हो जाती है, इन्द्रियलोलुपों की भी ऐसी ही दशा रहती है। **मन्त्रैः**=मारण उच्चाटन आदि के तान्त्रिक मन्त्रों से। **आवेश्यन्ते इव**=मानो वश में कर लिये जाते हैं। जिस व्यक्ति पर मन्त्रों का प्रयोग होता है वह विवश हो जाता है। इन्द्रियों के वशीभूत राजाओं की भी ऐसी ही दशा हो जाती है। **सत्त्वैः**=हिंसक जन्तुओं से, अथवा यक्ष आदि देवयोनिविशेष से। **अवष्टभ्यन्ते इव**=मानो पकड़ लिये जाते हैं। यक्षों अथवा सिंह—व्याघ्र आदि हिंसक जन्तुओं के चंगुल में फँसकर जैसे प्राणी छटपटाते हैं वैसे ही लोभाभिभूत छटपटाया करते हैं। **सत्त्वं**=इस शब्द के अनेक अर्थों का संकेत हेमचन्द्र ने अपने शब्दानुशासन में किया है—सत्त्वं द्रव्ये गुणे चित्ते व्यवसायस्वभावयोः। पिशाचादवात्मभावे बलप्राणेषु जन्तुषु ॥ यक्ष आदि अदृष्ट सत्त्वों से अभिभूत होने का संकेत कालिदास ने भी शकुन्तला में किया है—(विदूषकः) अदृष्टरूपेण केनापि सत्त्वेनातिक्रम्य मेघप्रतिच्छन्दनस्य प्रासादस्याग्रभूतिमारोपितः। **वायुना**=वायु से, वातरोग से। **विडम्ब्यन्ते इव**=मानो पीड़ित किये जाते हैं, विचलित किये जाते हैं। वायु रोग में जैसे प्राणी स्थिर नहीं रह पाता वैसे ही लक्ष्मी के सम्पर्क में आते ही राजा लोग चञ्चल हो उठते हैं। **पिशाचैः**=(पिशम् आचा-

मन्तीति पिशाचा: तैः) मांसाहारी देवयोनि विशेष से। ग्रस्यन्ते इव=मानो निगल लिये जाते हैं। पिशाचग्रस्त व्यक्ति जैसे सूखता चला जाता है लक्ष्मी की आसक्ति से राजा लोग भी वैसे ही परेशान रहते हैं।

मदनशरैः=मदनस्य शरैः कामदेव के बाणो से। **मर्माहताः इव**=मर्माणि आहताः इव—(आ+√हन्+क्त) मानो मर्मस्थल पर चोट खाये हुए हों। **मुखभङ्गसहस्राणि**=मुखस्य भङ्गा मुखभङ्गा तेषां सहस्राणि। सहस्रों प्रकार की मुखभङ्गिमाएँ, तरह-तरह से मुंह बनाना। **कुर्वंते**=करते हैं। लक्ष्मी वाले लोग सामान्यजनों से सीधे ढङ्ग से बात नहीं करते, तरह-तरह से मुँह बिगाड़ते हैं। कवि ने इस मुखभङ्गिमा के हेतु रूप कामदेव के बाणों से मर्म पर आघात की उत्प्रेक्षा की है। '**मदनशरैः**' से न **धारयन्ति०**' तक तीनों वाक्यों में यही हेतूत्प्रेक्षा है।

धनोष्मणा=धनस्य ऊष्मा धनोष्मा तेन। धनों से। **पच्यमानाः इव**=(√पच+यक्+शानच्) मानो झुलसे जा रहे हों। **विचेष्टन्ते**=विविध चेष्टा करते हैं, छटपटाते हैं। यहाँ धनियों की विविध चेष्टाओं के हेतुरूप में धनोष्मा से झुलसे जाने में उत्प्रेक्षा है।

गाढप्रहाराहताः इव=गाढाश्च ते प्रहाराः गाढप्रहाराः तैः आहताः (आ+√हन्+क्त) इव। मानो तीव्र प्रहारों से घायल हों। **अङ्गानि**=हाथ-पैर आदि शरीर के अवयवों को। **न धारयन्ति**=नहीं सँभाल पाते, दूसरों का सहारा लिये बिना हिल-डुल नहीं पाते। यहाँ लक्ष्मी के मद में मस्त राजा लोगों की अकर्मण्यता के हेतुरूप में प्रहाराघात की उत्प्रेक्षा की गयी है।

कुलीराः इव—केकड़ों की भाँति। केकड़ा पानी का जीव है जो टेढ़ा-मेढ़ा चलता है। **तिर्यक**=वक्र कुटिल। **परिभ्रमन्ति**=चक्कर लगाते हैं। अर्थात् राजाओं के आचार कुटिल होते हैं। **अधर्मभग्नगतयः**=न धर्मः अधर्मः तेन भग्ना (√भञ्ज्+क्त+टाप्) गतिः येषां ते। अधर्म के कारण जिनकी गति (चाल, कर्त्तव्यपथ) नष्ट हो गयी है। **पङ्गव इव**=(दोनों टाँगों से बेकार) पङ्गुओं की भाँति। **परेण**=दूसरे से। **सञ्चार्यन्ते**=(सम्+√चर्+णिच्+यक्+लट्) सञ्चालित होते हैं। पङ्गु लोग टाँग बेकार होने से दूसरे के द्वारा चलते हैं। राजा लोग मन्त्री आदि के द्वारा प्रेरित होते हैं। अधर्म

के कारण पङ्गुओं की गति नष्ट हो जाती है और राजाओं का कर्त्तव्याकर्त्तव्य विवेक नष्ट हो जाता है।

(२१) मृषावादविषविपाकसञ्जातमुखरागा इवातिकृच्छ्रेण जलपन्ति, सप्तच्छदतरव इव कुसुमरजोविकारैः पार्श्ववर्तिनां शिरःशूलमुत्पादयन्ति, आसन्नमृत्यव इव बन्धुजनमपि नाभिजानन्ति, उत्कुपितलोचना इव तेजस्विनो नेक्षन्ते, कालदंष्टा इव महामन्त्रैरपि न प्रतिबुध्यन्ते, जातुषाभरणानीव सोष्माणं न सहन्ते, दुष्टवारणा इव महामनस्तम्भनिश्चलीकृता न गृह्णन्त्युपदेशम्।

हिन्दी अनुवाद— असत्य भाषणरूपी विष के परिणामस्वरूप मुखरोग उत्पन्न होने से मानो वे बड़े कष्ट से बोल पाते हैं, सप्तपर्ण वृक्ष जैसे पुष्पों की रज के विकार से समीपवर्त्ती लोगों के सिर में दर्द पैदा कर लेते हैं वैसे ही राजा लोग रजोगुण से उत्पन्न अपमानसूचक नेत्रभङ्गिमा से समीपवर्त्ती लोगों के सिर में दर्द पैदा कर देते हैं, मरणासन्न व्यक्तियों की भाँति सगे सम्बन्धियों को भी नहीं पहचानते, दुःखिनी-आँख वालों की भाँति तेज (१. प्रकाश, २. प्रताप) धारियों को नहीं देखते, महाविषैले सर्प से डसे हुओं की भाँति महामन्त्रों (१. विषनिवारक गारुड़ मन्त्र, २. शुभ मन्त्रण) से भी नहीं जागते, लाख से बने आभूषणों की भाँति ऊष्मा (१. गर्मी, २. तेज) युक्त को सहन नहीं करते, बहुत बड़े खम्भे से जकड़कर रखे गये दुष्ट हाथियों की भाँति महान् गर्व के दुराग्रह से अविचल बने हुए राजा लोग उपदेश ग्रहण नहीं करते।

व्याख्या - मृषावादविषविपाकसञ्जातमुखरोगाः = मृषावादः एव विषम् तस्य विपाकः मृषावादविषविपाकः तेन सञ्जातः मुखरोगः (मुखस्य रोगः) येषां ते असत्यभाषणरूपी विष के परिणामस्वरूप जिनके मुखरोग उत्पन्न हो गया है। इव = मानो, समान। अतिकृच्छ्रेण = बड़े कष्ट से। जलपन्ति = बोलते हैं, प्रलाप करते हैं। राजा लोग गर्व के कारण किसी के साथ बोलने में भी कष्ट का

अनुभव करते हैं। यदि कभी बोलते भी हैं तो असम्बद्ध प्रलाप के रूप में। 'कष्ट से बोलना' क्रिया के हेतुरूप में मुखरोग की यहाँ उत्प्रेक्षा की गयी है। यदि यहाँ उपमा की स्थापना की जाये तो अर्थ यों होगा—जिस प्रकार दोषों के कुपित होने से उत्पन्न विष विकार के कारण मुखरोग हो जाने पर प्राणी बड़े कष्ट से बोल पाते हैं उसी प्रकार ये राजा लोग असत्यभाषी होन के कारण अपनी बात को सँभाल-सँभालकर बड़ी मुश्किल से बोल पाते हैं।

सप्तच्छदतरवः इव—सप्तः छदाः येषां ते सप्तच्छदाः सप्तच्छादाश्च ते तरवः ते इव—सप्तपर्ण वृक्षों की भाँति! ढाक में जैसे प्रत्येक शाखागत तीन-तीन पत्ते होते हैं वैसे ही सप्तपर्ण की प्रत्येक टहनी में सात-सात पत्ते होते हैं। **कुसुमरजोविकारैः**=रजसः विकाराः रजोविकाराः कुसुमानि एव रजोविकाराः तैः। रजोगुण के विकार रूप में अपमानसूचक नेत्रभङ्गिमा से। तरुपक्ष में—कुसुमानां रजांसि कुसुमरजांसि तेषां विकारैः। पुष्पों की रज के विकार से। **पार्श्ववर्तिनाम्**=पार्श्वे वर्तन्ते इति पार्श्ववर्तिनः तेषाम्—निकट रहने वालों का। **शिरःशूलम्**=शिरसि शूलम्। सिर में दर्द। **उत्पादयन्ति**=पैदा करते हैं। सप्तपर्ण के पुष्पों की रज का अधिक स्पर्श होने से सिर में दर्द हो जाता है। इधर राजा लोगों की दूसरों के प्रति अपमानसूचक नेत्र भङ्गिमा देखकर पास में रहने वाले विवेकी पुरुषों को पीड़ा होती है।

आसन्नमृत्यवः इव—आसन्नः (आ + √सद् + क्त) मृत्युः येषां ते। जिनकी मृत्यु निकट है उनकी भाँति। **बन्धुजनम् अपि**=बन्धुश्चासौ जनः बन्धुजनः तम्। सगे सम्बन्धियों को भी। **न अभिजानन्ति**=नहीं पहचानते। मरणासन्न व्यक्ति चेतना शून्य होने से तथा राजा लोग घमण्ड के कारण अपने बन्धुओं को भी पहचानना छोड़ देते हैं।

उत्कुपितलोचनाः इव—उत्कुपिते (उत् + √कुप् + क्त) लोचने येषां ते इव। दुःखित आँखों वाले व्यक्तियों की भाँति। **तेजस्विनः**=तेजः एषाम् अस्तीति तेजस्विन (तेजस् + विनि) तान्, प्रतापी पुरुषों को, उत्कुपितलोचन पक्ष में—चमकदार वस्तुओं को। **न ईक्षन्ते**=नहीं देखते। राजा लोग ईर्ष्या-वश अपने से अधिक तेजस्वियों को तथा नेत्ररोगी चौंध के कारण चमकदार वस्तुओं को नहीं देखते।

कालदंष्टाः इव—कालेन दंष्टाः (√दंश् + क्त) इव। महाविषैले सर्प से डसे हुओं की भाँति, काल से दबाये गये प्राणियों की भाँति। **महामन्त्रैः अपि** = महान्तश्च ते मन्त्राः महामन्त्राः तैः मन्त्रियों के सत्यपरामर्शों से भी। कालदष्टा पक्ष में—विषवैद्यों द्वारा प्रयुक्त विष निवारक मन्त्र से भी। **न प्रतिबुध्यन्ते** = नहीं जागते। राजा लोग परामर्श पाकर भी सन्मार्ग पर नहीं आ पाते और सर्पदंष्ट व्यक्ति मूर्च्छा नहीं त्यागते।

जातुषाभरणानि इव—जतुषा निर्मितानि जातुषाणि (जतुष् + अण्) जातुषाणि च तानि आभरणानि जातुषाभरणानि तानि, इव। लाख से बने हुए अलङ्कारों की भाँति। **सोष्माणम्** = ऊष्मणा सह इति सोष्माणम्। स्वाभिमानी पुरुष को, तेजस्वी को; जातुषाभरण पक्ष में—गर्मी वाले द्रव्य की, अग्नि को। **न सहन्ते** = सहन नहीं करते। राजा लोग ईर्ष्यावश और लाख के गहने पिघल जाने के भय से तेजः सम्पन्न को सहन नहीं करते।

दुष्टवारणाः इव—दुष्टाश्च ते वारणाः ते इव। बिगड़े हुए हाथियों की भाँति। **महामानस्तम्भनिश्चलीकृताः** = महांश्चासौ मानः महामानः तेन स्तम्भः महामानस्तम्भः तेन निश्चलीकृताः (अनिश्चलाः कृता इति। निश्चल + च्वि + √कृ + क्त) महान् अभिमान के कारण दुराग्रह से (अपने गलत पक्ष पर भी) अविचल बने हुए। दुष्टवारण पक्ष मे—महद् यो मान यस्य सः महामानः सः चासौ स्तम्भः महामानस्तम्भः तेन निश्चलीकृता। बहुत बड़े खूंटे से बाँधकर स्थिर किये गये। **उपदेशम्** = शिक्षा को। **न गृह्णन्ति** = ग्रहण नहीं करते। राजा लोग अभिमाम के कारण हितैषियों की शिक्षा को और बिगड़े हुए हाथी मद के कारण महावत के संकेत को नहीं मानते।

(२२) तृष्णाविषमूर्च्छिताः कनकमयमिव सर्वं पश्यन्ति; इषव इव पानवर्धितं तैक्ष्ण्याः परप्रेरिता विनाशयन्ति, दुरस्थितान्यपि फलानीव दण्डविक्षेपैर्महाकुलानि शातयन्ति, अकालकुसुमप्रसवा इव मनोहराकृतयोऽपि लोकविनाशहेतवः, श्मशानाग्नय इवातिरौद्रभूतयः तैमिरिका, इवादूरदर्शिनः, उपसृष्टा इव क्षुद्राधिष्ठितभवनाः।

हिन्दी अनुवाद—लालसा रूपी विष से मोहित हुए राजा लोग हर वस्तु को सोने की बनी हुई-सी देखने लगते हैं, शाण पर पैनाने से बढ़ी हुई तीक्ष्णता वाले वाणों की भांति मदपान से बढ़ी हुई उग्रता वाले (राजा लोग) दूसरों से प्रेरित होकर विनाश कर देते हैं, दूर लगे हुए फलों को भी जैसे डंडा फेंककर लोग तोड़ दिया करते हैं, वैसे ही राजा लोग दूर स्थित होने पर भी बड़े कुलों को दण्डनीति के प्रयोग से नष्ट कर देते हैं, अकाल में निकले फूलों की भांति मनोहर आकार वाले होकर भी वे लोगों के विनाश के कारण बनते हैं, अत्यन्त भयङ्कर ऐश्वर्य वाले होते हैं, तिमिर नामक नेत्र रोग वालों की भाँति वे अदूर-दर्शी होते हैं, वेश्याओं की भाति वे क्षुद्र (१. नीच, २. विट्) जनों से युक्त मकान वाले होते हैं।

व्याख्या--**तृष्णाविषमूर्च्छिताः**=तृष्णा एव विषम् तृष्णाविषम् तेन मूर्च्छिताः (मूर्च्छ् + क्त) धन के लालसा रूपी विष से मूर्च्छित होकर। **सर्वम्**=हर वस्तु को। **कनकमयम् इव**=कनकेन निर्मितम् कनकमयम् (कनक + मयट्) तद् इव। सोने से बनी हुई-सी। **पश्यन्ति**=देखते हैं। हर समय धनलिप्सा रहने से राजाओं को हर वस्तु स्वर्णमय दिखायी देती है।

इषवः इव=वाणों की भाँति। **पानवर्धित तैक्ष्ण्याः**=पानेन वर्धितम् (√वृध् + क्त) तैक्ष्ण्यम् (तीक्ष्ण + ष्यञ्) येषां ते। मदिरापान से जिनके स्वभाव का तीखापन बढ़ गया है वे राजा लोग। वाण पक्ष में—शाण पर पैनाने से जिनकी तीक्ष्णता बढ़ गयी है, वे। **परप्रेरिताः**=परेण प्रेरिताः (प्र + √ईर् + णिच् + क्त) दूसरों से प्रेरित होकर। राजा लोग दूसरों के कहने से तथा वाण धनुर्धारी के धनुष से फेंके जाने पर। **विनाशयन्ति**=नाश करने लगते हैं। राजा लोग जनता को तथा वाण अपने लक्ष्य को विनष्ट कर देते हैं :

दूरस्थितानि अपि—दूर स्थितानि (√स्था + क्त)। **अपि**=दूर रहने पर भी। **फलानि इव**=वृक्षों पर लगे फलों की भाँति। **महाकुलानि**=महान्ति च तानि कुलानि महाकुलानि=श्रेष्ठ कुल को। **दण्डविक्षेपैः**=दण्डस्य विक्षेपैः।

दण्डनीति के प्रयोगों से । फलपक्ष में--बार-बार डण्डा फेंकने से । शातयन्ति =नष्ट कर देते हैं। राजा लोग समाज के बड़े घरानों पर दण्ड-नीति का प्रयोग करके उन्हें नष्ट-भ्रष्ट कर डालते हैं, जिससे अपना प्रतियोगी सिर न उठा सके ।

अकालकुसुमप्रसवाः इव=न काल: अकाल:, कुसुमाना प्रसवा: (प्र+√सू +अप्) कुसुमप्रसवा: अकाले कुसुमप्रसवा अकालकुसुमप्रसवा: ते इव । असमय में फूलों की उत्पत्ति की भांति । **मनोहराकृतयः अपि**=मन: हरन्तीति मनोहरा आकृतय: येषां ते । मनोहर आकार वाले होकर भी । **लोकविनाशहेतवः**= लोकानां विनाश: लोकविनाश: तस्य हेतव: । लोगों के विनाश के हेतु बन जाते हैं । राजा लोग देखने में सुन्दर होते हुए भी घातक वृत्ति के होते हैं । कहा भी है--हसन्नपि नृपो हन्ति । असमय में पुष्पों का उद्गम भी महाउत्पातकारी माना जाता है । यथा—द्रुमोदधिविशेषाणामकाले कुसुमोद्गम: । फलप्रसवायोबन्धस्तं महोत्पातं विदुर्बुधा: ।

श्मशानाग्नयः इव=श्मशानस्य अग्नय: ते इव । श्मशान की आग की भांति । **अतिरौद्रभूतयः**=अतिशयेन रौद्रा:, अति रौद्रा:, भूतय: येषाम् ते । जिनका ऐश्वर्य बहुत भयानक होता है, अग्निपक्ष में—जिनकी राख बड़ी भयानक होती हैं । राजा लोग अपनी विभूति से दूसरों पर भय और क्रोध का वातावरण बनाये रखते हैं । श्मशानाग्नि की राख भी अत्यन्त भयोत्पादक होती है ।

तैमिरिकाः इव=तिमिरेण संसृष्टा: तैमिरिका: (तिमिर+ठक्) ते इव । तिमिर नामक नेत्र रोग वालों की भांति । **अदूरदर्शिनः**=दूरं पश्यन्तीति दूरदर्शिन: (दूर+दृश्+णिनि) न दूरदर्शिन: अदूरदर्शिन:=दूर तक देखने वाले राजा लोग आगे तक की सोचकर काम करने वाले नहीं होते । तिमिर रोगियों को दूर तक का नहीं दिखता ।

उपसृष्टाः इव=उपसृष्टम् (उप+√सृज्+क्त) संजातम् आसाम् इति उपसृष्टा: ता इव--मैथुन रत वेश्याओं की भांति । उपसृष्ट--मैथुन **क्षुद्राधिष्ठितभवनाः**=क्षुद्रै: अधिष्ठितानि (अधि+√स्था+क्त) भवनानि येषां ते । जिनके भवन नीच जनों से व्याप्त हैं । वेश्यापक्ष में—क्षुद्रै: अधिष्ठितं

भवनं यासां ताः। जिनका कमरा विट् (बदमाश) लोगों से युक्त है। राजा लोगों के घरों में नीच वृत्ति के लोगों को आश्रय मिलता है और वेश्याओं के घर में कामी विट् रहा करते हैं। 'उपसृष्टा इव०' वाक्य की दूसरी व्याख्या यों हो सकती है। **उपसृष्टा इव** = (उप + सृज् + क्त) उपसर्ग या उपद्रव से ग्रस्त व्यक्तियों की भाँति। **क्षुद्राधिष्ठितभवना** = क्षुद्राभिः अधिष्ठितानि भवनानि येषां ते। जिनके भवन वेश्याओं से भरे हुए हैं, उपसृष्ट व्यक्ति पक्ष में—मधुमक्खियों ने जिनके घरों में स्थान (छत्ता) बना लिया है। क्षुद्रा— वेश्या, मक्खी। अमरकोश में क्षुद्रा के दोनों अर्थों का संकेत है—क्षुद्रा व्यङ्गा नटी वेश्या सरघा (मक्षिका) कण्टकारिका। घरों में मधुमक्खियों का छत्ता बना लेना अपशकुन माना जाता है। आपत्ति में ऐसे अपशकुन होने लगते हैं। वेश्याओं का घर में प्रवेश भी नाश की निशानी है।

(२३) श्रूयमाणा अपि प्रेतपटहा इवोद्वजयन्ति; चिन्त्यमाना अपि महापातकाध्यवसाया इवोपद्रवमुपजनयन्ति, अनुदिवसमापूर्यमाणाः पापेनेवाध्मातमूर्तयो भवन्ति, तदवस्थाश्च व्यसनशतसंख्यतामुपगता वल्मीकतृणाग्रावस्थिता जलबिन्दव इव पतितमप्यात्मानं नावगच्छन्ति।

हिन्दी अनुवाद—मृतक के ढोलों की भाँति सुने जाने मात्र से उद्विग्न कर देते हैं, ब्रह्महत्या आदि महापापों को करने के लिए निश्चय की भाँति विचार में लाये जाने मात्र से अशान्ति पैदा कर देते हैं, प्रतिदिन उसकी देह फूलती जाती है, मानो पाप से भरे जा रहे हों और उस अवस्था में सैकड़ों व्यसनों के निशाने बने हुये बाँबी के तिनके के अग्रभाग पर स्थित जलकणों की भाँति अपने पतन को भी नहीं जानते।

व्याख्या— **प्रेतपटहाः इव** = प्रेतानां (प्र + इण् + क्त) प्रेतानां पटहाः प्रेतपटहाः ते इव। मृतक के शव के आगे बजने वाले ढोलों की भाँति। **श्रूयमाणाः**

अपि=(√श्रु+यक्+शानच्) केवल सुने जाते हुए, सुने जाने मात्र से। **उद्वेजयन्ति**=उद्विग्न बना देता है। अपि शब्द का अर्थ यहाँ 'केवल या मात्र' है। इन राजाओं का नाम भी कान में पड़ जाये तो उद्वेग होने लगता है इनके देखने के बाद की दिशा का तो कहना ही क्या? मृतक ढोल भी सुनने मात्र से चित्त मे उद्वेग पैदा करते हैं। बंगाल में युवावस्था के मृतक के आगे भी पटह बजाने की प्रथा है।

महापातकाध्यवसाया: इव=महान्ति च तानि पातकानि महापातकानि तेषाम् अध्यवसाया: (अधि+अव+√सो+घञ्) ते इव। ब्रह्महत्या आदि बड़े पापों को करने के निश्चय की भाँति। **चिन्त्यमाना: अपि**=(√चिंति+यक् शानच्) विचार किये जाने मात्र से। **उपद्रवम्**=परेशानी को, अशान्ति को। **उपजनयन्ति**=पैदा करते हैं। यहाँ भी अपि का अर्थ 'मात्र' है। महापातकों को करने के निश्चय का विचार मात्र से चित्त में अशान्ति उत्पन्न हो जाती है। उनके सम्पर्क मे आने की दिशा का तो कहना ही क्या? राजाओं के विषय में भी सोचने मात्र से उपद्रव खड़े हो जाते है। मनु महाराज ने चार महापातक बताये हैं—ब्रह्महत्या सुरापानस्तेयं गुर्वङ्गनागम:। महान्ति पातकान्याहु संसर्गश्चापि तै: सह।

अनुदिवसम्=दिवसं दिवसं अनुदिवसम्=प्रतिदिन, आये दिन। **पापेन**=अधर्म से। **आपूर्यमाणा: इव**=(आ+√पुर्+यक्+शानच्) मानो भरे जा रहे हों। **आध्मातमूर्तय:**=आध्माता (आ+√ध्मा+क्त+टाप्) मूर्ति: येषां ते। जिनकी देह फूल गयी है। **भवन्ति**=हो जाते हैं। यहाँ राजा लोगों की देह फूलने की क्रिया के हेतु रूप में पाप भरने की उत्प्रेक्षा की गयी है।

च=और। यहाँ दो वाक्यों को जोड़ने के लिए 'च' का समुच्चय अर्थ में प्रयोग किया गया है। **तदवस्था:**=सा अवस्था येषां ते। उस अवस्था वाले राजा लोग, वैसी दशा में वे। **व्यसनशतसंख्यताम्**=व्यसनानां शतानि व्यसनशतानि येषां संख्यम्, तस्य भाव: व्यसनशतसंख्यता ताम्। सैंकड़ों व्यसनों के निशानेपन को। **उपगता:**=(उप+√गम्+क्त) प्राप्त हुए, अर्थात् अनेक बुरी आदतों का निशाना बने हुए। **वल्मीकतृणाग्रावस्थिता:**=वल्मीकस्य तृणानि वल्मीकतृणानि तेषाम् अग्राणि वल्मीकतृणाग्राणि तेषु अवस्थिता: (अव+√स्था

+क्त)। बाँबी के ऊपर खड़े हुए तिनकों के अग्रभाग पर स्थित जलबिन्दव इव=जालस्य बिन्दवः जलबिन्दवः। ते इव=जलकणों की भाँति। पतितम् अपि=(√पत्+क्त) धर्म से च्युत, पृथ्वी पर गिरा हुआ भी। आत्मानम्=अपने को। न अवगच्छन्ति=नहीं जान पाते। दीमकों के लगाये गये मिट्टी के ढेर (वल्मीक) के ऊपर खड़े तिनके पर पड़ी जल की बूँदें नीचे गिर जाने पर भी मिट्टी सूखी होने के कारण गिरी दिखायी नहीं देतीं। राजा लोगों को भी अपनी पतन अवस्था का बोध नहीं हो पाता।

---

(२४) अपरे तु स्वार्थनिष्पादनपरैर्धनपिशितग्रासगृध्रैरास्थाननलिनीबकैः द्यूतं विनोद इति, परदाराभिगमनं वैदग्ध्यमिति, मृगयां श्रम इति, पानं विलास इति, प्रमत्ततां शौर्यमिति, स्वदारपरित्यागमव्यसनितेति, गुरुवचनावधीरणमपरप्रणेयत्वमिति, अजितभृत्यतां सुखोपसेव्यत्वमिति, नृत्यगीतवाद्यवेश्याभिसक्तिं रसिकतेति, महापराधानकर्णनं महानुभावतेति, परिभवसहत्वं क्षमेति, स्वच्छन्दतां प्रभुत्वमिति देवावमाननं महासत्त्वतेति, बन्दिजनख्यातिं यशः इति, तरलतामुत्साह इति, अविशेषज्ञतामपक्षपातित्वमिति दोषानपि गुणपक्षमध्यारोपयद्भिरन्तः स्वयमपि विहसद्भिः प्रतारण कुशलैर्धूर्तैरमानुषोचित्ताभिः स्तुतिभिः प्रतार्यमाणा वित्तमदमत्तचिता निश्चेतनतया तथैवेत्यारोपितालीकाभिमाना मर्त्यधर्माणोऽपि दिव्यांशावतीर्णमिव सदैवतमिवातिमानुषमात्मानमुत्प्रेक्षमाणाः प्रारब्धदिव्योचितचेष्टानुभावाः सर्वजनस्योपहास्यतामुपयान्ति। आत्मविडम्बनाञ्चानुजीविना जनेन क्रियमाणामभिनन्दन्ति।

हिन्दी अनुवाद—दूसरे राजा लोग उन धूर्तों द्वारा जो स्वार्थ साधन में लगे रहते हैं, धनरूपी मांस को खाने के लिए गृध्र बने रहते हैं, राजदरबाररूपी

पुष्करिणी में बगुले बने होते हैं. जो जुए को विनोद, परनारीगमन को चतुरता, शिकार को व्यायाम, सुरापान को विलासिता, प्रमाद को शूरता, अपनी स्त्री के त्याग को व्यसनहीनता, गुरुओं के वचनों की अवहेलना को स्वाधीनता, नौकरों के काबू में न रखने को आसानी से सेवा योग्य होना, नृत्य-गीत-वाद्य एवं वेश्याओं में अनुराग को रसिकता, बड़े अपराधों के सुनने को महाप्रभावशालिता, अपमान सहन को क्षमा, मनमानेपन को प्रभुता, देवताओं के अनादर को महा-शक्तिशालिता, बन्दीजनों से की गयी प्रशंसा को यश, चपलता को उत्साह तथा बुरे-भले की विशेष जानकारी न रखने को पक्षपातहीनता, इस प्रकार दोषों को भी गुणों की श्रेणी में रखते हुए अन्दर (मन में) स्वयं भी हँसते रहते हैं और ठगी में बहुत चतुर हैं, की गयी देवोचित प्रशंसाओं में ठगे जाते हुए, धन के मद से बेहोश, विवेकहीनता के कारण (जैसा ये कह रहे हैं) ऐसी ही है यों सोचकर झूठा अभिमान आरोपित करके मरणधर्मा होते हुए भी अपने को मानो दैवी अंश लेकर अवतीर्ण, मानो किसी देवता से अधिष्ठित अति मानव मानते हुए दिव्यजनों के योग्य चेष्टाओं तथा अभाव का प्रारम्भ करके सब लोगों की हँसी के पात्र बन जाते हैं और सेवक लोगों द्वारा की जा रही अपनी प्रवञ्चना का भी अभिनन्दन करते हैं।

व्याख्या—तु = दूसरी ओर। एक ओर तो कुछ राजा लोग लक्ष्मी के लोभ में फँस जाते हैं और दूसरी ओर (इस) अनुच्छेद के अनुसार धूर्तों के चंगुल में। यहाँ 'तु' का प्रयोग पक्षान्तर प्रस्तुत करने के लिए किया गया है। **अपरे** = दूसरे राजा लोग। संस्कृत में परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले कुछ शब्दों का प्रयोग करके एक ही अर्थ को प्रकट करने के लिए होता है। जैसे—परे—अपरे, नास्तिक:—अनास्तिक:, उत्तम:—अनुत्तम:। इस वाक्य का अन्वय यों होगा—अपरे तु स्वार्थनिष्पादनपरै: दोषानपि गुणपक्षमध्यारोपद्भि: धूर्तै: स्तुतिभि: प्रतार्यमाणा: सर्वजनस्योपहास्यतामुपयान्ति। **स्वार्थनिष्पादनपरै:** = स्वस्य अर्थ: स्वार्थ: तस्य निष्पादनम् (निस् + √पद् + णिच् = ल्युट्) स्वार्थनिष्पादनं तस्मिन् परै:। स्वार्थ सिद्ध करने में लगे हुए ये सब धूर्त के विशेषण हैं। **धनपिशितग्रासगृध्रै:** = धनम् एव पिशितम् धनपिशितम् तस्य ग्रास: धनपिशित-

ग्रास तस्मिन् गृध्रः । धनरूपी मांस के खाने में गृधरूप । **आस्थाननलिनीबकः** = आस्थानम् (आ + √स्था + ल्युट्) एव नलिनी तस्या बकः । राजदरबार रूपी कमलिनी (कानन) मे बगुले बन राजदरबार का सहारा लेकर दूसरों को ठगने वाले । बगुला भी कमलिनी की ओट मे मछलियों को ठगता रहता है । **द्यूतम्** = जुए को । वास्तव में 'द्यूतमेतत् पुरा कल्पे दृष्ट वैरकरं महत् । 'तस्माद् द्यूत न सेवेद् हास्यार्थमपि बुद्धिमान्' मनु ने द्यूत को निषिद्ध कर्म बताया है । **विनोदः** इति = यह मनोरञ्जन है, यों कहकर दोष को गुण श्रेणी में रखना । **परदाराभिगमनम्** परस्य दारा परदारा तेषाम् अभिगमनम् (अभि + √गम् + ल्युट्) परस्त्री के साथ सम्भोग को दूसरे की स्त्री के साथ मैथुन । **वैदग्ध्यम्** = (विदग्ध + ष्यञ्) चतुराई । वास्तव में 'आयुष्कामेन वक्तव्यं जातु परयोषिति' मनु के अनुसार परनारी मैथुन पापकारी तथा आयुः क्षयकारी है । संस्कृत में दार शब्द पुंलिङ्ग तथा बहुवचन मे प्रयोग होता है । **मृगयाम्** = (√मृग + णिक् + श + यक् √टाप्) मृग्यन्ते पशवः यस्याम् । शिकार खेलने को । **श्रम** = व्यायाम् । वास्तव में 'न च प्राणिवधः स्वर्ग्यः मनु के अनुसार मृगया पापजनक है । **पानम्** = सुरा पीने को । **विलासः** = विलासिता, आनन्द-मौज का जीवन में ब्रह्महत्या सुरापानम्'''पातकानि महान्ति'''। मनु के अनुसार सुरापान महापातक है । **प्रमत्तताम्** = प्रमत्तस्य भावः प्रमत्तता (प्र + √मद् + क्त + तल + टाप्) ताम् प्रमाद को, असावधानी को । **शौर्यम्** = (शूर ष्यञ्) शूरता, वीरता । वस्तुतः 'अशासत्स्तस्करान्यस्तु बलिं गृह्णाति पार्थिवः । तस्य प्रक्षुभ्यते राष्ट्रस्वर्गाच्च परिहीयते । मनु के अनुसार प्रमाद अस्वर्ग्य है । **स्वदारपरित्यागम्** = स्वस्य दाराः स्वदाराः तेषां परित्यागम् । अपनी पत्नी के त्याग को । **अव्यसनिता** = व्यसनम् (वि + √अस + ल्युट्) अस्यास्तीति व्यसनी (व्यसन + इनि) तस्य भावः व्यसनिता न व्यसनिता अव्यसनिता । व्यसनों का न होना, आसक्ति का अभाव । वास्तव में 'अमोक्षो धर्मविवाहानाम् कौटिल्य के अनुसार स्वस्त्रीत्याग शास्त्र विरुद्ध है । **गुरुवचनावधीरणम्** = गुरूणां वचनानि गुरुवचनानि तेषाम् अवधीरणम् (अव + √धीर + ल्युट) । गुरुओं के वचनों की अवहेलना, अनादर को । **अपरप्रणेयत्वम्** = परेण प्रणेयः (प्र + √नी + मत) परप्रणेयः तस्य भावः प्रणेयत्वम् न परणेयत्वम् अपरप्रणेयत्वम् । दूसरे से

परप्रणेयः तस्य भावः प्रणेयत्वम् न परप्रणेयत्वम् अपरप्रणेयत्वम् । दूसरे से प्रेरित न होना, स्वाधीनता, आत्मविवेक । वस्तुतः ब्राह्मणांश्च व्यतिक्रम्य यद् राजा कर्तुमिच्छति । तत्पापं शतधा भूत्वा राजानमनुगच्छति = पराशर के अनुसार गुरुओं की अवहेलना पाप है । **अजितभृत्यताम्** = जिताः भृत्याः येन स जितभृत्यः तस्य भावः जितभृत्यता न जितभृत्यता अजितभृत्यता ताम् । नौकरों का वश में न रहना, सेवकों की स्वाधीनता को । **सुखोपसेव्यताम्** = सुखेन उपसेव्यः (उप + √सेव् + ण्यत्) सुखोपसेव्यः तस्य भावः सुखोपसेव्यत्वम् । आसानी से सेवा योग्य होना, सेवकों को कष्ट न देना । वास्तव में 'अस्ति पुत्रो वशे यस्य भृत्यो भार्या तथैव च । अभावेऽप्यतिसन्तोषः स्वर्गस्थोऽसौ महीतले ॥' चाणक्य के अनुसार नौकरों को वश में रखना स्वर्गनिवास के समान सुखप्रद है । **नृत्यगीतवाद्यवेश्याभिसक्तिम्** = नृत्यं च गीतं च वाद्यं च वेश्याश्च नृत्यगीतवाद्यवेश्याः तासु अभिसक्तिम् (अभि + √सञ्ज् + क्तिन्) नाच-गाना-बाजा एवं वेश्याओं के अनुराग को । **रसिकता** = रसः अस्यास्ति ग्राह्यत्वेन रति रसिकः (रस + ठन्) तस्य भावः । आनन्द लेना, रसास्वादन । वस्तुतः राजा की नृत्यादि में आसक्ति स्वकर्त्तव्य के प्रति शिथिलता रूपी दोष की परिचायक है । **महापराधानकर्णनम्** = महान्तश्च ते अपराधाः महापराधाः तेषाम् अनाकर्णनम् न आकर्णनम् (आ + कर्ण् + णिच् + ल्युट्) बड़े-बड़े अपराधों को अनसुना कर देने को महानुभावता महान् अनुभावः (अनु + √भू + घञ्) यस्य सः महानुभावः तस्य भावः । महाप्रभावशीलता बड़प्पन के कारण परवाह न करना । वास्तव में 'यावानवध्यस्य वधे तावान् वध्यस्य मोक्षणे । अधर्मो नृपते र्दृष्टो धर्मस्तु विनियच्छतः ।' मनु के अनुसार अपराधी को दण्ड न देना अधर्म है । **परिभवसहत्वम्** = परिभवम् (परि + √भू + अप्) सहते इति परिभवसहः (परिभव + √सह् + अच्) तस्य भावः परिभवसहत्वम् तत् । अपमान सहन करने को । **क्षमा** = सहनशीलता । वास्तव में आज्ञानृपाणां परम हि तेजो यस्तां न शस्त्रवध्यः । पराशर के अनुसार आज्ञा न मानना आदि अपमान करने वाले को दण्ड ही मिलना चाहिये क्षमा नहीं । **स्वच्छन्दताम्** = स्वः छन्दः यस्य सः स्वच्छन्दः तस्य भावः स्वच्छन्दता ताम् । स्वेच्छाचारिता को । **प्रभुत्वम्** = प्रभुता, स्वशक्तिप्रभाव । वास्तव में 'धर्मासनस्थः श्रुतिशास्त्रदृष्टया शुभाशुभाचारविचारकृत स्यात् ।।' पराशर के अनुसार राजा को शास्त्रतन्त्र होना चाहिए ।

स्वतन्त्र नहीं। **देवावमाननम्** = देवानाम् अवमाननम् (अव + √मान् + ल्युट्)। देवताओं के अपमान को। **महासत्त्वता** = महत् सत्त्वं यस्य सः महासत्त्व तस्य भावः। महाशक्तिशालिता। वास्तव में 'इन्द्राग्नियमवित्तेशानलेशमातरिश्वनः। शीतांशुस्तीक्ष्णमाश्चब्रह्मादयोऽसृजन् नृपम् ॥' पराशर के अनुसार नृप का निर्माण इन्द्रादि देवशक्तियों से हुआ है। देवशक्तियों की अवहेलना आत्महत्या सदृश पाप है। **बन्दिजनख्यातिम्** = बन्दिनश्च ते जनाः बन्दिजनाः तेषाम् ख्यातिम् (√ख्या + क्तिन्) बन्दीजनों या चारणों से की गयी प्रशंसा को। **यशः** = कीर्ति। वास्तव में बन्दिजन झूठी प्रशंसा किया करते हैं, उनके द्वारा गुणवर्णन का जनता में फैली कीर्ति से कोई सम्बन्ध नहीं। **तरलताम्** = चपलता तो कभी कुछ, कभी कुछ करने को। **उत्साहः** = (उत् + सह् + घञ्) आलस्यहीनता, स्फूर्ति। वास्तव में "सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्। वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः।" नीति के अनुसार राजा को विचार्यकारी होना चाहिये, जल्दबाज नहीं। **अविशेषज्ञताम्** = जानातीति ज्ञ (√ज्ञा + क) विशेषेण जानाति विशेषज्ञः तस्यः भाव विशेषज्ञता, न विशेषज्ञता अविशेषज्ञता ताम्। किसी भी विषय में विशेष जानकारी न रखने को। **अपक्षपातित्वम्** = पक्ष पततीति, पक्षपाती (पक्ष + √पत् + णिनि) न पक्षपाती अपक्षपाती तस्य भावः निष्पक्षता, पक्षपातहीनता। वास्तव में अपराधानपराध का विवेक न होने पर दण्डनीय को दण्ड तथा गुणी को पुरस्कार नहीं मिल सकेगा जबकि (धर्म्येषु दानं त्वद्यक्रूरसु दण्डम्) नीति के अनुसार दण्ड व पुरस्कार की व्यवस्था होनी चाहिये। **इति** = इस प्रकार से। **दोषान् अपि** = द्यूत आदि दोषों को भी। **गुणपक्षम्** = गुणानाम् पक्षम्। विनोद आदि गुणों की श्रेणी में। **अध्यारोपयद्भिः** = (अधि + आ √रुह् + णिक् + शतृ) आरोपित करते हुए। संस्कृत में, रुह् धातु जिसका अर्थ 'चढ़ना' है गत्यर्थक मानी जाती है और गत्यर्थक के योग में द्वितीया विभक्ति होती है। इन धातुओं का कर्म हिन्दी में अधिकरण जैसा लिखा जाता है। जैसे 'पेड़ पर चढ़ता है' इसको संस्कृत 'वृक्षम् आरोहति' है। **अन्तः** = भीतर, मन में। **स्वयम् अपि** = अपने आप भी। **विहसद्भिः** = (वि + √हस् + शतृ) हँसते हुए। **प्रतारणकुशलैः** = कुशान् लान्तीति कुशलाः प्रतारणे (प्र + √तॄ + णिच् + ल्युट्) कुशलाः प्रतारण कुशलाः तैः

ठगने में चतुर, कुशाओं के लाने में बड़ी चतुरता की आवश्यकता होती थी; क्योंकि उनका मूल तथा अग्र दोनों भाग बड़े तीक्ष्ण होते थे, इसलिए लक्षणा शक्ति के बल पर अब कुशल का शब्द अर्थ 'चतुर' ही हो गया है। **धूर्तैः**= मक्कार लोगों द्वारा। **अमानुषोचिताभिः**=मानुषाणाम् उचिताः (उच् + √क्त + टाप्) मानुषोचिताः न मनुषोचिताः अमानुषोचिताः ताभिः। अमानवोचित, देवोचित, बढ़ी-चढ़ी। **स्तुतिभिः** =(√स्तु + क्ति) प्रशंसाओं से। **प्रतार्यमाणाः**= (प्र + तॄ + णिच् + यक् + शानच्)। ठगे जाते हुए। **वित्तमदमत्तचित्ताः**= वित्तस्य मदः वित्तमदः तेन मत्तं चित्तं येषां ते। धन के मद से जिसका चित्त मतवाला हो गया है, वे। **निश्चेतनतया**=निष्क्रान्तः चेतनायाः निश्चेतनः तस्य भावः निश्चेतनता तया। विवेकहीनता के कारण। **तथा एव** वैसा ही, जैसा इन धूर्तों ने दोषों को गुण रूप में बताया है। **इति** इस प्रकार। **आरोपितालीकाभिमानाः**=आरोपितः (आ + √रुह् + णिच् + क्त) अलीक अभिमानः (अभि + √मन् + घञ्) यैः ते। अपने में झूठा अभिमान आरोपित किये हुए, अपने को सर्वगुण सम्पन्न समझते हुए। **मर्त्यधर्माणः अपि**=मर्तम् अर्हन्ति मर्त्या (मर्त + यत्) मर्त्या धर्मा येषां ते मर्त्यधर्माणः (मर्त्य + धर्म + अनिच) इस लोक से सम्बद्ध जन्म-मृत्यु रूप धर्म वाले होते हुए भी। **आत्मानम्**=अपने को। **दिव्यांशावतीर्णम् इव**=दिवम् अर्हन्ति दिव्याः (दिव् + यत्) दिव्याश्च ते अंशा दिव्यांशाः तैः अवतीर्णम् इव (अव + √तॄ + क्त) मानो दैवी अंशों के साथ उतरे हुए हों। **सदैवतम् इव**=दैवतेन सह इव। मानो किसी देवता से अधिष्ठित हों, किसी देवता का इनमें निवास हो। **अतिमानुषम्**=मानुषम् अतिक्रान्तः अतिमानुषः तम् सामान्य मानव से ऊँचा, दिव्य। **उत्प्रेक्षमाणाः**= (उत् + प्र + √ईक्ष् + शानच) समझते हुए, मानते हुए। **प्रारब्धदिव्योचितचेष्टानुभावाः**=प्रकर्षेण आरब्धाः प्रारब्धाः (प्र + आ + रभ् + क्त + टाप्) दिव्यानाम् उचिताः दिव्योचिताः, प्रारब्धा दिव्योचिता चेष्टा अनुभावाश्च यैः ते। दिव्य पुरुषों जैसी चेष्टाओं तथा प्रभावों का प्रारम्भ करके अर्थात् सङ्कल्पमात्र से समुद्रलङ्घनादि चेष्टाएँ तथा शापमात्र से शत्रु आदि को मारने जैसे प्रभाव दिखाना आरम्भ करके। **सर्वजनस्य**=सर्वश्चासौ जनः सर्वजनः तस्य। सब लोगों की। **उपहास्यताम्**=उपहसितुं योग्यः उपहास्यः (उप + √हस् + ण्यत्) तस्य

भावः उपहास्यता ताम् । मजाक की विषमता को । हँसी की पवित्रता को। **उपयान्ति**=प्राप्त हो जाते हैं । **उपहास्यताम् उपयान्ति**=हँसी के पात्र बन जाते हैं । **च**=तथा । **अनुजीविना जनेन**=अनु जीवतीति अनुजीवी तेन जनेन। अपने आश्रय में रहकर जीविका पाने वाले सेवक लोगों से । **क्रियमाणम्**=(√कृ+यक्+शानच्) की जा रही । **आत्मविडम्बनाम्**=आत्मनः बिडम्बनाम् अपनी वञ्चना को, अपने मन में रहने वाले गुणों के आरोप रूपी धोखे को। **अभिनन्दन्ति**=अभिनन्दन करते हैं, सराहते हैं । राजा लोग अपने साथ किये जा रहे धोखे को धोखा न मानकर धूर्तों के चक्कर में पड़ जाते हैं ।

(२५) मनसा देवताध्यारोपणप्रतारणासम्भूत सम्भावनोपहताश्चान्तः प्रविष्टापरभुजद्वयमिवात्सबाहुयुगलं सम्भावयन्ति । त्वगन्तरिततृतीय-लोचनं स्वललाटमाशङ्कन्ते । दर्शनप्रदानमप्यनुग्रहं गणयन्ति । दृष्टि-पातमप्युपकारपक्षे स्थापयन्ति । सम्भाषणमपि संविभागमध्ये कुर्वन्ति । आज्ञामपि वरप्रदानं मन्यन्ते । स्पर्शमपि पावनमाकलयन्ति ।

हिन्दी अनुवाद—राजा लोग (धूर्तों द्वारा किये गये) दैवत्व के आरोप रूप धोखे से बनी मिथ्या धारणा से नष्ट होकर मन से अपनी भुजाओं की मानो भीतरी छिपी हुई अन्य दो भुजाओं वाले समझने लगते हैं (अपने को चतुर्भुज विष्णु मानने लगते हैं) अपने मस्तक को त्वचा में छिपे हुए तीसरे नेत्र वाला सोचने लगते हैं । (अपने को भाललोचन शिव समझते हैं) दर्शन देना भी कृपा मानते हैं । किसी पर दृष्टि डालने को भी उपकार की श्रेणी में रखते हैं। बात करना भी पारितोषिक देना समझना है । आज्ञा देने को भी वर देना मानते हैं । छू देना भी पवित्र कर देना समझते हैं ।

व्याख्या– च = और धूर्तों के धोखे में आने के साथ-साथ। **देवताध्यारोपणप्रतारणसम्भूतसम्भावनोपहताः** = देवस्य भावः देवता, तस्य अध्यारोपणम् (अधि + आ + रुह् + णिच् + ल्युट्) तद् एव प्रतारणा (प्र + √तृ + णिच् + युच् + टाप्) देवताध्यारोपण प्रतारणा तया सम्भूता (सम् + √भू + क्त + युच् + टाप्) सम्भावना (सम् + √भू + णिच् + युच् + टाप्) देवताध्यारोपणप्रतारणा सम्भूतसम्भावना तया उपहृताः (उप + √हृ + क्त)। अपने ऊपर किये गये देवत्व के आरोपरूपी धोखे से उत्पन्न मिथ्याधारणा से नष्ट हुए राजा लोग। **मनसा** = मन से, अपनी कल्पना से। **आत्मबाहुयुगलम्** = बाह्वो युगलम् बाहुयुगलम् आत्मनः बाहुयुगलम् आत्मबाहुयुगलम् = अपनी दो भुजाओं को। **अन्तःप्रविष्टापरभुजद्वयम् इव** = द्वौ अवयवौ तस्या तत् द्वयम (द्वि + तयप् अयच् आदेश) भुजयोः द्वयम् भुजद्वयम्, अन्तप्रविष्टम् (प्र + √विश् + क्त) अपरम् भुजद्वयम यस्य तत इव। जिनके भीतर मानो दो अन्य भुजाएँ छिपी हुई हैं। **सम्भावयन्ति** = समझने लगते हैं। अर्थात् अपने में चतुर्भुज विष्णु की कल्पना करने लगते हैं। गुप्तकालीन ऐसी अनेक मूर्तियाँ मिली हैं, जिनमें विष्णु को कन्धे से लेकर कोहनी तक दो भुजाओं वाला तथा कोहनी से चार भुजाओं वाला बनाया गया है। कन्धे से कोहनी तक दो भुजाओं में अन्य दो भुजाओं के छिपे रहने की सम्भावना उस समय थी। उसी की ओर यहाँ संकेत किया गया है।

स्वललाटम् = स्वस्य ललाटम् अपने भाल को। **त्वगन्तरित तृतीय लोचनम्** = त्वचा अन्तरितं तृतीयं लोचनं स्मिन् तत्। जिसमें त्वचा से तीसरा नेत्र छिपा हुआ है, वैसा। **आशङ्कन्ते** = शङ्का करने लगते हैं, सोचने लगते हैं अर्थात् अपने को शिव समझने लगते हैं। **दर्शनप्रदानम् अपि** = दर्शनस्य (दृश् + ल्युट्) प्रदानम् (प्र + √दा + ल्युट्) दर्शन देना भी। **अनुग्रहम्** = (अनु + √ग्रह् + अच्) कृपा, अनुकम्पा। **गणयन्ति** = गिनते हैं। यदि किसी को दर्शन भी दे दिये तो मानो बहुत बड़ी कृपा कर दी। **दृष्टिपातम् अपि** = दृष्टे पातम् (√पात् + घञ्) अपि। किसी की ओर आँख उठाकर देखने को भी। **उपकारपक्षे**—उपकारस्य पक्षे। अहसान की कोटि में। **स्थापयन्ति** = स्थापित करते हैं। यदि किसी की ओर दृष्टि उठाकर देख लिया तो मानो बड़ा उपकार कर

दिया। **सम्भाषणम् अपि**=(सम्+√भाष्+ल्युट्)। बातचीत करना भी। **संविभागमध्ये**=संविभागस्य (सम्+वि+√भज्+घञ्) मध्ये पारितोषिक के रूप में दान की मद में। **कुर्वन्ति**=मानते हैं। किसी के साथ बातचीत कर ली तो मानो बहुत बड़ा इनाम दे दिया। **आज्ञाम् अपि**=आदेश देने को भी। **वरप्रदानम्**=वरस्य प्रदानम्। वर देना। **मन्यन्ते**=मानते हैं। यदि किसी को कोई काम करने के लिए आज्ञा दे दी तो मानो कोई वर दे दिया। **स्पर्शम् अपि**=(√स्पृश्+घञ्) स्पर्श कर देने को भी। **पावनम्**=(पू+णिच्+ल्युट्)। पवित्र करने वाला। **आकलयन्ति**=समझते हैं। यदि किसी को छू लिया तो मानो उसे पवित्र कर दिया। इस अनुच्छेद में किसी व्यक्ति से राजा के मिलने तथा अनुकूल होने का क्रमिक वर्णन किया गया है। दर्शन देना, दृष्टिपात करना, बातचीत करना समझकर किसी कार्य की आज्ञा तथा काम करने के उपरान्त उसे प्यार से आलिङ्गन करना ये सब अनुकूलता के लक्षण हैं।

V. Joshi

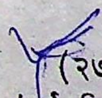
(२६) मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराश्च न प्रणमन्ति देवताभ्यः, न पूजयन्ति द्विजातीन, न मानयन्ति मान्यान्, नार्चयन्त्यर्चनीयान्, नाभिवादयन्त्यभिवादनार्हान्, नाभ्युत्तिष्ठन्ति गुरून् अनर्थकायासान्तरितविषयोपभोगसुखमित्युपहसन्ति विद्वज्जनम् जरावैक्लव्यप्रलपितमिति पश्यन्ति वृद्धजनोपदेशम् आत्मप्रज्ञापरिभव इत्यसूयन्ति सचिवोपदेशाय कुप्यन्ति हितवादिने।

हिन्दी अनुवाद—और झूठे बड़प्पन के गर्व से भरे हुए वे राजा लोग देवताओं को प्रणाम नहीं करते, ब्राह्मणों को नहीं पूजते, माननीयों का मान नहीं करते, पूजनीयों को नहीं पूजते, अभिवादन के योग्य जनों को अभिवादन नहीं करते, गुरुओं को (देखकर) नहीं उठते, व्यर्थ परिश्रम से विषयों के उपयोग का सुख इन्होंने दूर कर रखा है, ऐसा समझकर विद्वान् लोगों का मजाक

उड़ाते हैं, बुढ़ापे की विकलता से की गयी बकवास के रूप में वृद्धजनों के उपदेश को समझते हैं, अपनी बुद्धि का अपमान है ऐसा समझकर मन्त्रियों के परामर्श को ईर्ष्या की दृष्टि से देखते हैं, हित की बात कहने वाले पर क्रोध करते हैं।

व्याख्या—च = और, मिथ्या धारणा से नष्ट बुद्धि होकर दूसरों पर प्रभुत्व स्थापना के साथ साथ। **मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराः** = महांश्चासौ आत्मा महात्मा तस्य भावः माहात्म्यम्, (माहात्मन् + ष्यञ्) मिथ्या च तत् माहात्म्य मिथ्या-माहात्म्यम् तस्य गर्वेण निर्भराः। झूठे बड़प्पन के घमण्ड से भर कर। **देवताभ्यः** = देवताओं को प्रसन्न करने के लिए। **न प्रणमन्ति** = प्रणाम नहीं करते। क्रिया के निमित्त क्रिया होने पर तुमुन् प्रत्ययान्त के कर्म में चतुर्थी विभक्ति होती है। क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः ॥ **द्विजातिन्** = द्वाभ्यां जननी संस्काराभ्यां जातिः (√जन् + क्तिन्) येषां तान्। माँ की कोख तथा उपनयन संस्कार से जन्म लेने वाले ब्राह्मणों को। **न पूजयन्ति** = नहीं पूजते। यद्यपि द्विज, द्विजन्मा तथा द्विजाति शब्दों का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य तीनों का संग्राहक है तथापि पुरातन संस्कृत साहित्य से लेकर अब तक के साहित्य में अधिकतर केवल ब्राह्मण के लिए इसका प्रयोग हुआ है। यहाँ भी ब्राह्मणों के लिए ही द्विजाति शब्द प्रयुक्त हुआ है। **मान्यान्** = मानम् अर्हन्तीति मान्याः (मानः + यत्) तान्, मान के योग्य व्यक्तियों को। **न मानयन्ति** = मान नहीं करते। **अर्चनीयान्** = (√अर्च + अनीयर्) पूजनीयों को। **न अर्चयन्ति** = नहीं पूजते। **अभिवादनार्हान्** = अभिवादन् अर्हन्ति अभिवादनार्हाः। (अभिवादन् + अर्ह् + अच्) तान्। अभिवादन के योग्य व्यक्तियों को। **न अभिवादयन्ति** = अभिवादन नहीं करते। **गुरून्** = गुरुओं को (देखकर)। **न अभ्युत्तिष्ठन्ति** = (अभि + उत् + √स्था + लट्) उठते नहीं, उठकर सम्मान नहीं करते। युवक का कर्त्तव्य है कि गुरुओं को आते देखकर अविलम्ब उठकर उन्हें सम्मान दे। **अनर्थकायासान्तरितविषयोपभोगसुखम्** = अविद्यमानः अर्थः सः अनर्थः सः एव अनर्थकः (स्वार्थे कन्) सः चासौ आयासः अनर्थकायासः, विषयाणाम् उपभोग विषयोपभोगः तस्य सुखम्, विषयोपभोग सुखम् अनर्थकायासेन अन्तरित विषयो-पभोगसुख येन तम्। शास्त्रीय कर्मों में व्यर्थ परिश्रम करके इन्होंने विषयोपभोग

का सुख खो दिया है। इति=यह सोचकर। विद्वज्जनम्=विद्वांश्चासौ जयः तम्। विद्वान् लोगों का। उपहसन्ति=मजाक या हँसी उड़ाते है। जरा-वैक्लव्यप्रलपितम्=जरायाः वैक्लव्यम् (विक्लव + ष्यञ्) जरावैक्लव्यम्, तेन प्रलपितम् (प्र + √लप् + क्त) बुढ़ापे की विकलता के कारण व्यर्थ की बकवास। इति=ऐसा। वृद्धजनोपदेशम्=वृद्धांश्च ते जनाः वृद्धाजनाः तेषाम् उपदेशम्=वृद्ध पुरुषों के उपदेश को। पश्यन्ति=देखते हैं, समझते हैं। आत्मप्रज्ञापरिभवः=आत्मनाः प्रज्ञा आत्मप्रज्ञा तस्या, परिभवः (परि + √भू + अपि) अपनी बुद्धि का तिरस्कार है। इति = ऐसा सोचकर। सचिवोपदेशाय=सचिवानाम् उपदेशः सचिवोपदेशः तस्मै। मन्त्रियों की सलाह से, सचिवों के सत्परामर्श से। असूयन्ति=द्वेष करते हैं। मन्त्रियों के परामर्श को मानने में अपनी बुद्धि का अपमान प्रतीत होता है। इसलिए उनकी बात नहीं मानते। यहाँ सचिवोपदेश शब्द में असूयः अर्थ वाली धातु के योग में चतुर्थी विभक्ति हुई है। क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः। हितवादिने=हितं वदतीति हितवादी (हित + √वद् + णिनि) तस्मै। हित की बात बोलने पर। कुप्यन्ति=क्रोध करते हैं। इस प्रकार 'हिताम्न य सम्शृणुते सः किं प्रभुः' नीति के अनुसार ऐसे राजा लोग कुत्सित श्रेणी में गिने जाते हैं। यहाँ भी पूर्वोक्त नियम से हितवादिने में चतुर्थी विभक्ति हुई है।



(२७) सर्वथा तमभिनन्दन्ति, तमालपन्ति, तं पार्श्वेकुर्वन्ति। तं संवर्धयन्ति, तेन सहसुखमवतिष्ठन्ते, तस्मै ददति तं मित्रतामुपजनयन्ति तस्य वचनं शृण्वन्ति, तत्र वर्षन्ति, तं बहुमन्यन्ते, तमाप्ततामापादयन्तिः योऽहर्निशमनवरतमुपरचिताञ्जलिरधिदैवतमिव विगतान्यकर्त्तव्यः स्तौति, यो वा माहात्म्यमुद्भावयति।

हिन्दी अनुवाद—हर प्रकार से उनका अभिनन्दन करते हैं, उससे बातें करते हैं, उसे बगल में बैठाते हैं, उसे बढ़ावा देते हैं, उसके साथ सुखपूर्वक बैठते

हैं, उसे दान देते हैं, उसे मित्र बनाते हैं, उसका कहना सुनते हैं, उस पर बरसते हैं, उसे बहुत मानते हैं, उसे विश्वासपात्र बनाते हैं, जो दिन-रात निरन्तर हाथ जोड़कर अन्य कर्त्तव्यों को छोड़कर देवता की भाँति उनकी स्तुति करता है अथवा उनकी महिमा प्रकट करता है ।



व्याख्या—सर्वथा = सर्वेण प्रकारेण इति सर्वथा (सर्व + थाल्) हर प्रकार से । तम् = उस पुरुष की । अभिनन्दन्ति = प्रशंसा करते हैं, स्वागत करते हैं । तम् आलपन्ति = उससे बोलते हैं, बातचीत करते हैं । तम् पार्श्वे कुर्वन्ति = उसे पास में रखते हैं, बगल में रखते हैं । तम् संवर्धयन्ति = उसे बढ़ावा देते हैं, उसकी सहायता करते हैं । तेन सह = उसके साथ । सुखम् = सुखपूर्वक । अवतिष्ठन्ते = रहते हैं, बैठते हैं । इस वाक्य में सह के योग म 'तेन' पद में तृतीया हुई है । सहयुक्तेऽप्रधाने ।। 'सुखम्' पद में क्रिया विशेषण होने के नाते द्वितीया विभक्ति का एकवचन तथा नपुंसकलिङ्ग हुआ है । 'अवतिष्ठन्ते' पद में अव उपसर्ग के साथ स्था धातु के आत्मने पद का प्रयोग हुआ है । समवप्रविभ्य: स्थ: ।। तस्मै ददति = उसे देते हैं, धनसम्पत्ति का दान करते हैं । तम् = उसको । मित्रताम् उपजनयन्ति = मित्रता की कोटि में लाते हैं, मित्र बनाते हैं । इस वाक्य में मित्रता शब्द में गौण कर्म होने से द्वितीया विभक्ति हुई है । दुह्, याच्, पच्, दण्ड्, रुध्, प्रच्छ्, चि, ब्रू शास्, जि, मथ्, मुष्, नी, हृ, कृष्, तथा वह् इन धातुओं तथा इनके समान अर्थ वाली धातुओं के योग में अन्य कारकों की भी कर्मसंज्ञा होकर उसमें द्वितीया विभक्ति होती है । अकथितं च ।। तस्य = उसका । वचनम् = ($\sqrt{}$ब्रू + ल्युट्) कहना । शृण्वन्ति = सुनते हैं, अर्थात् उसके कहने पर ध्यान देते हैं । तत्र = (तद् + त्रल्) उस पर । वर्षन्ति = बरसते हैं, धन आदि देते रहते हैं । तम् बहुमन्यन्ते = उसे बहुत मानते हैं अधिक सम्मान देते हैं । तम् = उसे । आप्तताम् = आपतस्यभाव: आप्तता (आप् + क्त + तल् + टाप्) ताम् । विश्वासपात्रता = को । आपादयन्ति = प्राप्त करते हैं, विश्वासपात्र बनाते हैं । य: = जो पुरुष । अहर्निशम् = अहश्च निशा च, दिन-रात । अनवरतम् = अविद्यमानम् अनवतरम् (अव + $\sqrt{}$रम् + क्त) यस्मिन्

तत् । विराम लिए बिना, निरन्तर । **उपरचिताञ्जलिः**=उपरचितः (उप+√रच्+क्त) अञ्जलिः येन सः । हाथ जोड़े हुए । **विगतान्यकर्त्तव्यः**=विगतम् (वि+गम्+क्त) अन्यत् कर्त्तव्यम् (√कृ+तव्यत्) तस्य सः । अन्य कार्यों को छोड़कर । **अधिदैवतम् इव**=देवता एव दैवतम् (देवत्+अण्) अधिकं दैवतम् अधिदैवतम् तद् इव । इष्ट देवता की भांति, उपास्य देव की भांति । **स्तौति**=स्तुति करता है, प्रार्थना करता है । **यः वा**=अथवा जो । **माहात्म्यम्**=माहात्मनः भावम् (माहात्मन्+ष्यञ्) बड़प्पन को, महिमा को । **उद्भावयति**=प्रकट करता है । इस प्रकार राजा लोग झूठी प्रशंसा करने वालों को अपनाते हैं ।

(२८) किं वा तेषां साम्प्रतं येषामतिनृशंसप्रायोपदेशनिर्घृणं कौटिल्यशास्त्रं प्रमाणम्; अभिचारक्रियाः क्रूरैकप्रकृतयः पुरोधसो गुरवः, पराभिसन्धानपरा मन्त्रिण उपदेष्टारः, नरपतिसहस्रभुक्तोज्झितायां लक्ष्म्यामासक्तिः, मारणात्मकेषु शास्त्रेष्वभियोगः सहजप्रेमार्द्रहृदयानुरक्ता भ्रातर उच्छेद्याः ।

हिन्दी अनुवाद—अथवा उन राजाओं का कौन-सा कर्म न्यायोचित हो सकता है जिसके लिए अति निष्ठुरता भरे उपदेशों के कारण निर्दय कौटिल्य अर्थशास्त्र प्रमाण है, (मारण-उच्चाटन आदि) अभिचार क्रिया करने से एकमात्र क्रूर स्वभाव वाले पुरोहित जिनके गुरु हैं, दूसरों को धोखा देने में लगे हुए मन्त्री जिनके उपदेशक हैं, हजारों राजाओं द्वारा भोगी जाकर छोड़ी हुई लक्ष्मी में जिसका अनुराग है, मार-काट वाले शास्त्रों में जिनकी रुचि या लगाव है और स्वाभाविक द्वेष से आर्द्र हृदय वाले अनुरागी भाई जिनके लिए उखाड़ फेंकने योग्य हैं ।

व्याख्या—तेषाम् वा—अथवा उन राजाओं का। किम् = कौन सा कर्म। साम्प्रतम् = न्यायसङ्गत, उचित है। येषाम् = जिनकी दृष्टि में। **अतिनृशंसप्रायोपदेशनिर्घृणम्** = नॄन् शंसतीति नृशंसः अत्यन्तः नृशंसः अतिनृशंसः अतिनृशंसः प्रायः यस्य सः अतिनृशंसप्रायः सः चासौ उपदेशः अतिनृशंसप्रायोपदेशः तेन निर्घृणम् (निष्क्रान्तं घृणायाः) अधिकतर कठोर उपदेशों के कारण दयाशून्य। **कौटिल्यशास्त्रम्** = कुटिलस्य भावः कौटिल्यम् (कुटिल + ष्यञ्) कौटिल्यम् अस्यस्तीति कौटिल्यः (कौटिल्य + अच्) तस्य शास्त्रम् कूटनीतिकार चाणक्य का कुटिलतापूर्वक अर्थशास्त्र ग्रन्थ। **प्रमाणम्** = यथार्थज्ञान का साधन। अन्य नीति ग्रन्थों को छोड़कर कौटिल्यशास्त्र को ही प्रमाण मानना राजाओं की अन्यायपरता का प्रतीक है।

अभिचारक्रियाक्रूरैकप्रकृतयः = अभिचारस्य (अभि + √चर् + घञ्) क्रिया अभिचार क्रियाः ताभिः क्रूरा एका प्रकृति येषां ते। मारण-उच्चाटन आदि तान्त्रिक क्रियाओं के कर्म से मुख्यतः क्रूर स्वभाव वाले। **पुरोधसः** = पुरः दधतीति पुरोधसः (पुरस् + √धा + असि)। पुरोहित। **गुरवः** = धर्मोपदेशक आचार्य। **पराभिसन्धानपराः** = परेषाम् अभिसन्धान (अभि + सम् + √धा + ल्युट्) पराः दूसरों को धोखा देने में लगे हुए।

मन्त्रिणः = मन्त्री लोग। **उपदेष्टारः** = (उप + √दिश् + तृच्) उपदेशक, परामर्शदाता। **नरपतिसहस्रभुक्तोज्झितायाम्** = नराणां पतयः नरपतयः तेषां सहस्राणि। नरपतिसहस्राणि तैः भुक्ता (√भुज् + क्त + टाप्) चासौ उज्झिता (√उज्झ् + क्त + टाप्)। च नरपतिसहस्रभुक्तोज्झिता यस्याम्। हजारों राजाओं ने जिसे भोगने के पश्चात् छोड़ दिया है, उसमें। **लक्ष्म्याम्** = लक्ष्मी में। **आसक्तिः** = (आ + √सञ्ज् + क्तिन्) अनुराग रखते हैं। **मारणात्मकेषु** = मारणम् (√मृ + णिच् + ल्युट्) आत्मा येषां तेषु मार-काट वाले, शत्रु आदि को मारने की क्रिया बताने वाले तन्त्र आदि। **शास्त्रेषु** = शास्त्रग्रन्थों में। **अभियोगः** = (अभि + √युज् + घञ्) लगाव, अभिरुचि। **सहजप्रेमार्द्रहृदयानुरक्ताः** = सह जायते इति सहजं च तत् प्रेम सहजप्रेम तेन आर्द्रं हृदयं येषां ते सहजप्रेमार्द्रहृदयाः ते च अनुरक्ताः (अनु + √रञ्ज् + क्त) स्वाभाविक प्रेम से आर्द्रहृदय

वाले प्रेमी ! भ्रातरः=भाई लोग । उच्छेद्याः=(उत्+√छिद्+ण्यत्) उखाड़ फेंकने योग्य है। राज्य प्राप्ति के लिए भाइयों तक का वध किया जाता है। इस प्रकार राजा लोगों का सारा व्यवहार ही अन्याय सङ्गत है।



(२६) तदेवं प्रायातिकुटिलकष्टचेष्टासहस्रदारुणे राज्यतन्त्रेऽस्मिन् महामोहकारिणि च यौवने कुमार। तथा प्रयतेथा यथा नोपहस्यसे जनैः न निन्द्यसे साधुभिः न धिक्क्रियसे गुरुभिः नोपालभ्यसे सुहृद्भि न शोच्यसे विद्वद्भिः यथा च न प्रकाश्यसे विटैः, न प्रतार्यसेऽकुशलैः, नास्वाद्यसे भुजङ्गैः नावलुप्यसे सेवकवृकैः, न वञ्च्यसे धूर्तैः, न प्रलोभ्यसे वनिताभि न विडम्ब्यसे लक्ष्म्या, न नर्त्यसे मदेन, नोन्मत्तीक्रियसे मदनेन, नाक्षिप्यसे विषयैः, नावकृष्यसे रागेणः। नापह्रियसे सुखेन।



हिन्दी अनुवाद—अतः हे राजकुमार चन्द्रापीड ! ऐसी अत्यन्त कुटिल तथा कष्टदायक हजारों चेष्टाओं के कारण भयकंर इस राज्य शासन में तथा महा-अज्ञान फैलाने वाले इस यौवन में रहते हुए ऐसा प्रयत्न करना, जिससे लोग तुम्हारा उपहास न करें, सत्पुरुष निन्दा न करें, गुरुजन धिक्कारे नहीं, मित्र उलाहना न दें, विद्वान् लोग (तुम्हारे विषय से) शोक न करें, जिससे कामी विट् लोग (तुम्हें प्रकाश में न लावें, चालाक ठग न लें, गुण्डे तुम्हें नोच न खावें, नौकररूपी भेड़िये हड़प न लें, धूर्त छल न लें, स्त्रियां लुभा न लें, लक्ष्मी धोखा न दे, मद नचा न दे, काम उन्मत्त न बना दे, विषय फँसा न लें, राग खींच न ले और सुख तुम्हें पथ-भ्रष्ट न कर दे।

व्याख्या—**तद्**=इसलिए। **कुमार**=हे राजकुमार चन्द्रापीड। **एवंप्रायाति-कुटिलकष्टचेष्टासहस्रदारुणे**=एवं प्रायः यस्य तत् एव प्रायम्, अतिशयेन कुटिलम्

अति कुटिलम् चेष्टाना सहस्रम्, चेष्टासहस्रम्, एव प्रायः कुटिलं कष्टं च तत् चेष्टासहस्रम् एवं प्रायातिकुटिलकष्टचेष्टासहस्रम् तेन दारुणे। अधिकतर इस प्रकार की अत्यन्त कुटिल तथा कष्टदायक सहस्रो चेष्टाओं के कारण भयङ्कर। **राज्यतन्त्रे**=राज्य तन्त्रे। राज्य शासन में। **च**=और। **महामोहकारिणि**=महांश्चासौ मोहः महामोहः तं करोतीति महामोहकरि तस्मिन्। महान् अज्ञान फैलाने वाले, मोह उत्पन्न करने वाले। **अस्मिन् यौवने**=इस युवावस्था में। (जीवन बिताते हुए तुम) **यथा**=इस प्रकार से। **प्रयतेथाः**=प्रयत्न करो, ऐसा व्यवहार करो। **यथा**=जिससे। **जनैः**=लोग, सामान्य जनता। **न उपहस्यसे** तुम्हारी हँसी न करें। 'नोपहस्यसे जनैः' से लेकर 'नापह्रियसे सुखेन' तक सभी वाक्य कर्मवाच्य हैं; अतः यहाँ कर्त्ता मे तृतीया तथा कर्म के अनुसार क्रिया में एकवचन का प्रयोग हुआ है।

साधुभिः=भले आदमी। **न निन्द्यसे**=तुम्हारी निन्दा न करें। **गुरुभिः**=गुरुजन। **न धिक्क्रियसे**=तुम्हें न धिक्कारें। **सुहृद्भिः**=मित्र लोग। **न उपालभ्यसे**=तुम्हें उलाहना न दें। **विद्वद्भिः**=विद्वान् लोग। **न शोच्यसे**=तुम्हें शोक का विषय न बना लें, तुम्हारे व्यवहारों को देखकर चिन्तित न हों। **यथा च**-और जिस प्रकार से, जैसे। **विटैः**=वेश्यागामी बदमाश लोग। **न प्रकाश्यसे**=तुम्हें प्रकाश में न लावें, तुम्हें भी अपना जैसा (अपनी मण्डली का एक सदस्य) मानकर समाज मे तुम्हारा व्यभिचारी रूप सामने न लावें। **कुशलैः**=चालाक लोग। **न प्रतार्यसे**=तुम्हें ठग न लें। **भुजङ्गैः**=गुण्डे, जार। **न आस्वाद्यसे**=तुम्हें नोच न खावें, तुम्हारी सम्पत्ति न चाट जायें। **सेवकवृकैः**=सेवका वृकाः इव सेवकवृकाः तैः, नौकररूपी भेड़िये। **न अवलुप्यसे**=तुम्हें निगल न जायें, तुम्हारी सम्पत्ति न हड़प लें,। **धूर्तैः**=धूर्त, मक्कार। **न वञ्च्यसे**=तुम्हें छल न लें,। **वनिताभिः**=स्त्रियाँ,। **न प्रलोभ्यसे**=तुम्हें लुभा न लें, अपने रूप सौन्दर्य से अपनी ओर आकृष्ट न कर लें। **लक्ष्म्या**=धन सम्पत्ति। **न विडम्ब्यसे**=तुम्हें धोखा न दे, तुम्हारा रूप न बिगाड़ दे। **मदेन**=घमण्ड उन्माद। **न नर्त्यसे**=तुम्हें नचा न दे, मतवाले होकर अपना स्वरूप न खो बैठो। **मदनेन**=कामदेव। **न उन्मत्तीक्रियसे**=अनुन्मत्तः उन्मत्तः क्रियते इति उन्मत्तीक्रियसे—तुम्हें उन्मादी न बना दे, चित्त मे विक्षेप पैदा न कर दे।

विषयैः=इन्द्रियों के विषय—रूपरस आदि । **न आक्षिप्यसे**=तुम्हें फँसा न लें, विषयों का आकर्षण तुम्हें कुमार्गगामी न बना दे । **रागेण**=प्रेमवासना । **न अवकृष्यसे**=तुम्हें खींच न ले । **सुखेन**=सुख प्राप्ति की भावना । **न अप-ह्रियसे**=तुम्हारा अपहरण न कर ले, तुम्हें पथभ्रष्ट न कर दे । इस प्रकार विषयासक्ति तथा कुसङ्ग से दूर रहने का प्रयत्न करना है ।

(३०) कामं भवान् प्रकृत्यैव धीरः पित्रा च महता प्रयत्नेन समारोपितसंस्कारः तरलहृदयमप्रतिबुद्धञ्च मदयन्ति धनानि, तथापि भवद्गुणसन्तोषो मामेवं मुखरीकृतवान् । इदमेव च पुनःपुनरभिधीयसे—विद्वांसमपि सचेतनमपि महासत्त्वमप्यभिजातमपि धीरमपि प्रयत्नवन्तमपि पुरुषमियं दुर्विनीता खलीकरोती लक्ष्मीरिति ।

हिन्दी अनुवाद—यह माना, आप स्वभाव से धैर्यशाली हैं और आपके पिता ने बड़े प्रयत्न से शुद्ध संस्कार डाले हैं; जबकि धन चञ्चल-हृदय और नासमझ को मतवाला बनाया करते हैं, तो आपके गुणों से उत्पन्न सन्तोष ने मुझे इस प्रकार वाचाल बनाया है और तुमसे फिर यही बार-बार कहता हूँ कि यह उद्दण्ड लक्ष्मी विद्वान् पुरुष को भी, समझदार को भी, महाबलशाली को भी, श्रेष्ठकुल में उत्पन्न को भी, धैर्यशाली को भी और प्रयत्नशील पुरुष को भी खल बना देती है ।

व्याख्या—**कामम्**=यह माना कि । **भवान्**=आप । **प्रकृत्या एव**=स्वभाव से ही । **धीरः**=धैर्य सम्पन्न हैं । **पित्रा च** और आपके पिता ने । **महता प्रयत्नेन**=बड़े प्रयत्न से । **समारोपितसंस्कारः**=समारोपित. (सम्+आ+रुह्, +णिच्+क्त) संस्कारा यस्मिन् सः । आप पर संस्कार चढ़ाये हैं, शुद्ध संस्कार डाले हैं । **धनानि**=सम्पत्तियाँ । **तरलहृदयम्**—तरल हृदयं यस्य तम् । चञ्चल हृदय वाले को । **अप्रतिबुद्धम् च**=न प्रतिबुद्धम् (प्रति+बुध्+क्त) नासमझ

को चेतन को। मदयन्ति = मतवाला बनाया करते हैं। विवेकी पुरुष को धन का घमण्ड नहीं होता। तथापि = तो भी धनोन्माद का प्रभाव आप पर न पड़ने की स्थिति में भी। भवद्गुणसन्तोषः = भवतः गुणाः भवद् गुणाः तैः सन्तोषः आपके गुणों से उत्पन्न सन्तोष ने। आपके विनय शौर्य आदि गुणों को देखकर जो मुझे सन्तोष मिला है उसने। माम् = मुझ शुकनास को। एवम् = इस प्रकार विस्तार के साथ कहने के लिए। मुखरीकृतवान् = अमुखर मुखरं कृतवान् इति मुखरीकृतवान् (मुखर + च्वि + कृ + क्त + क्तवतु) मुखर बनाया है, मुझे बहुत-कुछ कहने के लिए प्रेरित किया है। जिसके गुणों को देखकर प्रसन्नता होती है उसके शुभ भविष्य की आकांक्षा से व्यक्ति और अधिक समझाने का प्रयत्न किया करता है। पुनः पुनः च = और बार बार। इदम् एव अभिधीयसे = तुमसे यही कहा जा रहा है कि। विद्वांसम् अपि = विद्वान् को भी। यहाँ विद्वांसम् से लेकर 'प्रयत्नवन्तम्' तक सभी विशेषण 'पुरुष' के हैं; 'अतः पुरुषम्' का सम्बन्ध प्रत्येक से रहेगा। सचेतनम् अपि = सह चेतनया इति सचेतनः तम् अपि — चेतनशील को भी, समझदार को भी। महासत्त्वम् अपि = महत् सत्त्वं यस्य तम् अपि। महाबलशाली को भी, दृढ़ संकल्पी को भी। अभिजातम् अपि = (अभि + जन् + क्त) अच्छे कुल में उत्पन्न को भी। धीरम् अपि = धैर्यशाली को भी। प्रयत्नवन्तं पुरुषम् अपि = प्रयत्नः अस्यास्तीति (प्रयत्नवान् + मतुप्) तम् पुरुषम् अपि—प्रयत्नशाली पुरुष को भी, अपने सुधार का प्रयत्न करने वाले को भी। इदम् = यह, जिसके दोषों का सविस्तार वर्णन किया गया है। दुर्विनीता = उद्दण्ड, विनयहीन। लक्ष्मीः = सम्पत्ति, राज्यलक्ष्मी। खलीकरोति = अखल खल करोति खलीकरोति—दुर्जन बना देती है, दोषी बना देती है; अतः आपको अत्यन्त सावधान होकर लक्ष्मी के दोषों से बचने का प्रयत्न करना चाहिये।

---

(३१) सर्वथा कल्याणैः पित्रा क्रियमाणमनुभवतु भवान्नवयौवराज्याभिषेकमङ्गलम्। कुलक्रमागतामुद्वह पूर्वपुरुषैरूढां धुरम्। अवनमय द्विषतां शिरांसि। उन्नमय स्वबन्धुवर्गम्। अभिषेकानन्तरञ्च प्रारब्धदिग्विजयः परिभ्रमन् विजितामपि तव पित्रा सप्तद्वीपभूषणां

पुनर्विजयस्व वसुन्धराम्। अयञ्च ते कालः प्रतापमारोपयितुम्। आरूढप्रतापो हि राजा त्रैलोक्यदर्शीव सिद्धादेशो भवति इत्येतावद-भिधायोपशशाम।

हिन्दी अनुवाद—आप अपने पिता द्वारा किये जा रहे युवराज पद पर अभिषेकरूपी मङ्गल का अनेक मङ्गलों के साथ हर प्रकार से उपभोग कीजिये। कुलपरम्परा से प्राप्त तथा पूर्वजों (पुरखों) द्वारा वहन किये गये राज्यभार को सँभालिये। शत्रुओं के सिर नीचे कीजिये। अपने बन्धुओं को उठाइये और अभिषेक के पश्चात् दिग्विजय आरम्भ करके घूमते हुए अपने पिता द्वारा जीती हुई भी सात द्वीपों रूपी आभूषणों वाली पृथ्वी को पुनः जीतिये। यह तुम्हारा प्रताप स्थापित करने का समय है। वास्तव में प्रताप को स्थापित करने वाला राजा तीनों लोकों के द्रष्टा योगी की भाँति सफल आज्ञाओं वाला हो जाता है। बस, इतना कहकर शुकनास मन्त्री चुप हो गये।

व्याख्या—भवान् = आप (चन्द्रापीड)। **पित्रा** = अपने पिता तारापीड के द्वारा। **क्रियमाणम्** = ($\sqrt{}$कृ + यक् + शानच्) किये जा रहे। **नवयौवराज्या-भिषेकमङ्गलम्** = युवा चासौ राजा युवराज—तस्य कर्म यौवराज्यम् (युवराज + ष्यञ्) नव च तद् यौवराज्यम् नवयौवराज्यम् तस्मिन् अभिषेकः (अभि + $\sqrt{}$षिच् + घञ्) नवयौवराज्याभिषेकः सः एव मङ्गलम् तत्। नये युवराज पद पर अभिषेकरूपी मंगल का। **कल्याणैः** = अनेक मङ्गलों के साथ। **सर्वथा** = हर प्रकार से। **अनुभवतु** = उपभोग कीजिये। **कुलक्रमागताम्** = कुलस्य क्रमः कुलक्रमः तस्माद् आगताम्। कुलपरम्परा से प्राप्त। **पूर्वपुरुषैः** = पूर्वे च ते पुरुषाः पूर्वपुरुषाः तैः। पूर्वजों द्वारा, पुरखों द्वारा। **ऊढाम्** = (वह् + क्त + टाप्) वहन किये गये। **धुरम्** = राज्यभार को। **उद्वह** = वहन कीजिये, सँभालिये। यहाँ 'कुलक्रमागताम्' वाक्य से पूर्व वाक्यों में चन्द्रापीड को 'भवान्' पद निर्दिष्ट किया है, जबकि इस वाक्य से आगे के वाक्यों में क्रियाएँ मध्यम पुरुष की हैं ऐसा क्रमभङ्ग नहीं होना चाहिये। **द्विषताम्** = शत्रुओं के। **शिरांसि** = सिरों को।

अवनमय = झुका दो। बन्धुवर्गम् = बन्धूनां वर्गम्। बन्धुओं के वर्ग को। उन्नमय = उन्नत कर, ऊँचा उठाओ। च = साथ ही। अभिषेकानान्तरम् = अभिद्यमानम् अनन्तरं यत्र तद् अनन्तरम् अभिषेकस्य अनन्तरम्। अभिषेक के पश्चात्, अभिषेक होते ही। प्रारब्ध दिग्विजयः = दिशां विजयः दिग्विजयः प्रारब्धः (प्र + आ + रभ् + क्त) दिग्विजयः येन सः। दिग्विजय प्रारम्भ करके। परिभ्रमन् (परि + भ्रम् + शतृ) घूमते हुए, चक्कर लगाते हुए। तव पित्रा = तुम्हारे पिता द्वारा, तारापीड द्वारा। विजिताम् अपि = (वि + √जि + टाप्) जीती हुई भी। सप्तद्वीपभूषणाम् = सप्त च ते द्वीपाः सप्तद्वीपाः ते एव भूषणानि यस्याः ताम्। जम्बू आदि सात द्वीपों रूपी आभूषणों वाली। वसुन्धराम् = वसु धारतीति वसुन्धरा ताम्। पृथ्वी को। पुनः = फिर। विजयस्व = जीतिये। वि उपसर्ग पूर्व में होने से जि धातु से यहाँ आत्मनेपद का प्रयोग हुआ है। विपराभ्यां जेः। ते = तुम्हारा। अयम् कालः = यह समय, अभिषेक प्राप्ति के पश्चात् का समय। प्रतापम् = अपने तेज को। आरोपयितुम् = (आ + √रुह् + णिच् + तुमुन्) ऊँचा चढ़ाने का है, स्थापित करने के लिए है। हि = सचमुच, निश्चय, ही। आरूढप्रतापः = आरूढः (आ + √रुह् + क्त) प्रतापः, (प्र + तप् + घञ्) यस्य सः। बढ़े-चढ़े प्रताप वाला।

राजा - भूपति। त्रैलोक्यदर्शी इव = त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकी सः एव त्रैलोक्यम् (त्रिलोकी + स्वार्थे = ष्यञ्)। त्रैलोक्यं = पश्यतीति त्रैलोक्यदर्शी (त्रैलोक्य + √दृश् + णिनि) सः इव। तीनों लोकों के द्रष्टा योगी की भाँति। सिद्धादेशः = सिद्धः (√सिध् + क्त) आदेश (आ + √दिश् + घञ्) यस्य सः। सफल आज्ञा वाला। भवति = हो जाता है। योगी की भाँति प्रतापी राजा के आदेश को भी उल्लंघन करने का साहस किसी को नहीं होता। वह जो आज्ञा करता है वह पूरी होती है। इति = बस, शुकनास के उपदेश की समाप्ति का संकेत। एतावत् = इतना। अभिधाय = (अभि + √धा + क्त्वा - ल्यप्) कहकर। उपशशाम् = मन्त्री शुकनास चुप हो गये और इस प्रकार महाकवि बाण की कादम्बरी कथा का यह शुकनासोपदेश प्रसङ्ग पूर्ण हो गया।

ॐ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

